सिद्धयोग

श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्री रामनवमी जन्मोत्सव विशेषांक

श्री ... प्रकाशन सवाई 283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 48, अंक

अप्रैल - 20

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 48 | अप्रैल 2015 | अंक : 1

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु –
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।

कठोपनिषद 2/2/11

अर्थात्

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाशक सूर्य देवता लोगों की आँखों से होने वाले बाहर के दोषों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा एक परब्रह्म परमात्मा लोगों के दुःखों से लिप्त नहीं होता क्योंकि सबमें रहता हुआ भी वह सबसे अलग है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – *योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज* 3
2. सम्पादकीय 10
3. ऐसे बरसे मेरे गुरुदेव – जगदीश राए बंसल 13
4. श्री मद्भगवत में योग परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह 16
5. श्री गुरु महिमा एवं गुरुमंत्र – हेमराज चोपड़ा 20
6. मानस के संत – पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय 24
7. ईश्वर से जुड़ने का उपाय – पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाङ्मय 27
8. जीवन में योग की अपरिहार्यता – स्वामी आत्म शरणानन्द 31
9. श्री सुरेन्द बहादुर जी एवं उनके परिवार पर कृपा– केशवदेव जी 33
10. यों विचित्र तरीके से काटा क्लिष्ट कर्म – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी 41
11. श्री वसिष्ठ जी के द्वारा श्री रामचन्द्रजी के प्रति जीवन मुक्त पुरुष की विशेषता 43
12. स्वस्थ कैसे रहें ? 46
13. श्री महाप्रभु रामलाल परमात्मने नमामि – राजीव कुमार 48
14. आजा सिद्धगुफा दरबार में – श्री विजय शर्मा 50
15. दर्शनाभिलाषा – श्री भूपेन्द्र 51
16. ऊँकार कर दो प्रभुजी – श्रीमती डॉ. नमिता राकेश सिंह 52
17. योग–आसन 53
18. धैर्य की मशाल लिए – आशुतोष मिश्रा 54
19. स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सदुपदेश 55

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 170.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

मेरे श्री गुरुदेव

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तकवह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता, इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने-अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या है और उनका स्वरूप क्या है? यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं, एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्वाचित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भगवद्गीता के 17 वें अध्याय में कहा है –

सत्त्वानुरुपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द घन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्‌गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं ''यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'' इसके

अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वत: परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये है। सम्भव हो सकता है इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो–जो चमत्कारिक घटनाये घटित होती रहती है उनका इस छोटे–से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नही हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल–क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। उसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जहाँ–जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्‌गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनाये घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता–पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छ: साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर–कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक–लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन–यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्‌गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झारखण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाई। एक नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य

को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है – 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तुछिन्नसंशयाः।' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही ''कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्'' की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया –

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनी–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये –

(1) योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति। इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी, निज निर्मित साधनों का प्रचार। उनमें उनका एक प्रमुख साधन था, 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है,

उसी प्रकार इन साधनों के करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। वह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बनकर स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का अध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए। इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए –

1 : सर्वोत्तान – केवल तीन बार समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।

2 : स्कन्ध चालन – समय पन्द्रह मिनट।

3 : पादचालन – आठ मिनट।

4 : नाभिचालन – पन्द्रह मिनट।

5 : जानुप्रसार – दोनों ओर से तीन बार समय लगभग चार मिनट।

6 : बालमचलन – केवल एक मिनट।

7 : बच्चे का ध्यान – पाँच मिनट।

8 : नाड़ी संचालन – पन्द्रह मिनट।

9 : उत्क्षेपण – केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी है तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(2) अमर तत्व साधन – जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और

हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन ही लोक–हितार्थ कराया करते थे; किंतु कुछ समय बाद नेती, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा काम उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) शक्तिपात दीक्षा – जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है, सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्‌गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्ति पात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्‌चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क

वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किंतु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते-करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वह लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ-धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं है किन्तु कोई सामर्थ्य वान् परम योगिराज है। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15-16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा, ब्रह्मचारी जी! हमारे एक भाई साधू रूप में अभी-अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। इस अद्‌भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने-अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख-मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी प्रख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः ।।

श्री श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

बड़े–बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं? वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिए आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जावेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज हैं। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे–से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्प पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण–कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा – बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश–गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशक्तिमान! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्रष्टा श्री प्रभुजी ! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ–कुछ समझने लगे। यहीं से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या–क्या कार्य किया, वह शनैः–शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा जिससे पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

सम्पादकीय

परम गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

ईश्वर की भांति महायोगियों का जन्म और कर्म भी दिव्य होता है। इस दिव्यता का ज्ञान जिसको हो जाता है वह भी दिव्य हो जाता है। योग अमृत व अमर विद्या है इस विद्या के जान लेने पर मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। त्रिविध ताप से मनुष्य को मुक्त करने के लिए समय–समय पर ईश्वर का योगियों के रूप में अवतरण होता रहता है। ऐसे ही महायोगियों में सृष्टि के आदि से अन्त तक हिमालय में अजर अमर रहकर वास करने वाले दिव्य महापुरुष योग विधि से निर्माण काय करके पृथ्वी पर आये हैं जिनका परम पावन नाम प्रभु रामलाल जी है। वे एक ही समय में अनेक शरीर धारण कर (काय निर्माण) योग विद्या के प्रचार–प्रसार करने के लिए प्रकट होते रहते हैं। आप अपने भक्तों में भगवान् महादेव के रूप में सर्वत्र पूजित हैं।

आपका अवतरण पंजाब के अमृतसर नगर में स्वनाम धन्य ज्योतिर्विद् पं. गण्डाराम जी के पवित्र घर में हुआ। श्रीमाता जी का नाम भागवन्ती देवी हुआ। पिताश्री को आपकी जन्म कुण्डली को देखकर ही आप के महायोगी होने का ज्ञान हो गया था। आपके पूर्वज भी बहुत शक्ति सम्पन्न महापुरुष हो चुके हैं जो अपने संकल्पमात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से अग्नि प्रज्वलित कर देना, वर्षा करा देना आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी दिव्य कुल में आपका अवतरण हुआ है। नित्य ही अपने शाश्वत स्वरूप में अवस्थित रहने वाले ये महायोगी दयार्द्र होकर सद्गुरु के रूप में आकर योग विद्या का दान देते हैं। शैशवावस्था में ही आपके कार्य अलौकिक थे, चमत्कारिक थे। चौदह वर्ष की अल्पायु में ही विद्याध्ययन के बहाने से घर से निकल पड़े थे और सर्वप्रथम कुरुक्षेत्र पहुँचे। वहाँ सभी लोगों ने आपके कई चमत्कार देखे। फलित ज्योतिष का ज्ञान अद्भुत था। गुरुजन भी आपकी अप्रतिमप्रतिभा से आश्चर्य चकित थे और आप को महान योगी के रूप में देखते थे। यहाँ से आप श्री काशी जी आ गये। वहाँ भी धार्मिक समाज में भ्रष्टाचार तथा कुरीतियाँ फैली हुई थी उन कुरीतियों का अपनी योग शक्ति से दमन किया। तान्त्रिक, मान्त्रिक आपके सामने नतमस्तक हुए। कुछ वर्ष वहाँ रहने के बाद आप श्री वृन्दावन धाम पहुँचे। वहाँ भगवान् की दिव्य लीला स्थली के दर्शन किये। तत्पश्चात आगरा जिले में बरहन गाँव में पहुँच गये। वहाँ पर एक भक्त ठाकुर दास के यहाँ कुछ दिन रहे। वहाँ पर आपकी अलौकिक कृपा लोगों पर बरसने लगी। जो मुख से निकल जाता वही बात पूरी होती। लोगों को मुँह माँगा वरदान मिला। आपके दिव्य सानिध्य को पाकर सभी कृतकृत्य हुये। यहाँ से आगे आप सवाई आश्रम आये, यहाँ प्यारे लाल आदि आपके भक्त बन गये। यहाँ पर आपकी कृपा वर्षा होने लगी। भक्तों ने आपके लिये एक गुफा का निर्माण कर दिया। आपको अपने गुरुदेव का नेपाल में जाकर दर्शन करना था। अतः आप बन्द गुफा से सूक्ष्म रूप में निकल कर आकाश मार्ग से नेपाल की ओर चल पड़े। गाँव के

एक किसान ने आपको उड़ते देखा तो भययुक्त होने लगा। श्री प्रभुजी ने ऊपर से ही नाम लेकर उसे आशीर्वाद दिया और अपने नेपाल गमन की बात बताते हुए आगे निकल गये। नेपाल में अपने गुरुदेव सदाशिव के पास कई वर्ष रहे। फिर उनकी आज्ञा से आप पुन: भूमण्डल पर आ गये और संस्कारी बच्चों को ध्यानयोग के दिव्य ज्ञान का उपदेश किया। आपने देखा कि कलयुग के ये प्राणी क्षीणवीर्य एवं अल्प वीर्य होते जा रहे है। इसलिए आपने अपने मन से जीवन तत्व साधन, अमर तत्व साधन एवं फलतत्व आदि अनेक अद्‌भुत साधनों का आविष्कार किया। इन साधनों को करने से साधकों की जठराग्नि प्रदीप्ति होती है, शरीर में रसरक्त का नवनिर्माण होता है फलत: कायाकल्प हो जाता है इसी से कुण्डलिनी जागरण की स्थिति भी आ जाती है। मानव मात्र के लिए ये क्रियायें उपयोगी हैं। नेति आदि षटकर्मों का अभ्यास आश्रमों में कराया जाने लगा। इन क्रियायों का नि:शुल्क प्रशिक्षण देकर साधकों को स्वस्थ जीवन प्रदान किया। आपके कई शक्ति सम्पन्न विरक्त योगी हुए। जिन्होंने बाद में योग का बहुत प्रचार किया।

योग विद्या आत्मशक्ति अर्जन का मुख्य उपाय है। योग ही मनुष्य के तन–मन को पवित्र करने वाली विद्या है। अनादि काल से ऋषियों ने इस विद्या को आत्मसात किया और परम पद के अधिकारी बने। सिद्धयोग की प्राचीन परम्परा को आपने पुनर्जीवित किया है। आपके प्रमुख शिष्यों में योगीराज मुलखराज जी, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी, योगीराज चन्द्रमोहन जी, योगीराज नृसिंह मूर्ति जी तथा माता द्रौपदी देवी जी एवं ऋषि देवी जी उल्लेखनीय हैं। श्री प्रभु जी के इन महान शिष्यों ने योग विद्या का बहुल प्रचार किया और योग के अन्तरंग गूढ़ रहस्यों का ज्ञान अपने अधिकारी शिष्यों को दिया। योग से कितनी बड़ी–बड़ी शक्तियां इस कलिकाल में भी प्राप्त हो सकती हैं। इस बात को सभी को दिखा दिया। श्री प्रभु जी के शिष्य प्रशिष्यों के देश–विदेश आश्रम तथा योग केन्द्र खुले हुए हैं। योगीराज गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज श्री प्रभु जी के योग्यतम शिष्यों में एक हुए हैं। जिन्होंने अपने शिष्यों को ध्यान योग व राजयोग के अनुपम मार्ग का पथिक बना दिया है। अन्तरानुभूतियों के द्वारा वे योग के यथार्थ स्वरूप को जानने लगे। गुरुगीता में गुरुदेव का जो स्वरूप दर्शाया हुआ है श्री प्रभु जी का वही स्वरूप है। उनके अनुयायी उनके दिव्य ज्ञान से स्वयं भी परिपूरित हो रहे हैं तथा इस ज्ञान से और को भी आलोकित कर रहे हैं। जैसे एक ज्योति से अनन्त ज्योतियाँ जलती हैं, ऐसे ही योग की ज्योति हर घर में प्रकाशित हो रही है। गुरुदेव अपने शिष्यों के हृदयस्थ अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले होते हैं। श्री प्रभु जी अपने बच्चे के अज्ञानतिमिर का नाश करते हैं और आत्मज्ञान प्रदान करते हैं। सद्‌गुरु के इस उपकार के कारण ही गुरुगीता में आया है। ***यावत् कल्पान्तको देह: तावत् देवि गुरुं स्मरेत।।*** अर्थात् जब तक शिष्य का शरीर विद्यमान है तब तक उसे श्री गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिए।

योग के क्षितिज में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज सूर्य की भाँति दीप्तिमान हैं। बीसवीं शताब्दी के योगियों में उनका मूर्धन्य स्थान आता है। ऐसे योगेश्वर हिमालय में ही रहते हैं किन्तु अपने संस्कारी आत्माओं का परम कल्याण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने के लिये आते हैं और योग मार्ग का उपदेश करते हैं। इस युग के शीर्ष योगियों में प्रसिद्ध पूज्य देवरहा बाबा भी इनके ही शिष्य थे।

महाप्रभु जी आज भी हिमालय में योग देह अर्थात् अमर देह से विराजमान हैं, और कल्पान्त तक रहेंगे। काय–निर्माण करके कभी भी व कही भी आते जाते हैं पृथ्वी पर स्वछन्द विचरण किया करते हैं। ऐसे योगियों के विषय में उपनिषदों में भी लेख आता है –

आचेन्त्य युक्ति मान योगी नाना रूपाणि धारयेत्

संहरेत पुनस्तानि सूर्यो रश्मि गणानिव।

अचिन्त्य शक्ति संपन्न योगी नाना रूपधारण करके संसार में जीवों का उद्धार करते रहते हैं। पुनः अपनी इच्छा से शरीर का संवरण कर लिया करते हैं। महासिद्ध कपिल मुनि ने भी शरीर धारण करके अपने शिष्य को सांख्य–योग का ज्ञान प्रदान किया था। जहाँ भी योग की बात आती है सहज ही महाप्रभु की मूर्ति सामने आ जाती है। वे अपने भक्तों के हृदय कमल में सदा विराजमान रहते हैं भक्तों के मनोरथ पूर्ण किया करते हैं।

श्री सिद्धगुफा सवाई धाम में 26,27 व 28 मार्च को पावन प्राकट्य दिवस धूम धाम से मनाया जा रहा है। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी के 127 प्राकट्य दिवस के शुभ अवसर पर सभी भक्तों की ओर से श्री चरणों में कोटि–कोटि नमन है।

ऐसे बरसे मेरे गुरुदेव

– जगदीश राए बंसल, नई दिल्ली

श्री सिद्धगुफा संवाई धाम से सम्बन्ध रखने वाले हम सब कितने भाग्य शाली हैं, जो प्रात: स्मरणीय योग योगेश्वर सद्गुरु श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की छत्र–छाया में सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मगर हम से अधिक परम पुण्य वान वे भाग्यशाली हैं जो बचपन से ही श्री सिद्धगुफा की पतित पावनी रज कणों में खेल–कूद और लालन–पालन का सौभाग्य प्राप्त किए हैं। सम्भवत: यह पूर्व जन्म के पुण्य संग्रह का ही फल रहा होगा। इन्हीं में से एक हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री रघुराज जी हैं जो इसी भाग्यशाली गाँव संवाई के स्थाई निवासी हैं। अकारण दयालु अनाथ नाथ गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की, श्री रघुराज पर अनेकानेक कृपायें हैं जो श्रीमान जी की मुस्कान के गर्भ में ही निहित हैं। मगर कभी–कभी भाई जी अपना मुख खोल भी लेते हैं। ऐसा ही एक अवसर होली उत्सव दिनांक सोलह मार्च 2014 को कदम पेड़ वाले चबूतरे पर शीतल छाया का आनन्द लेते भावावेश में सुनने को मिला।

इस कृपा प्रसंग का संयोग तो भाई जी के बचपन से ही जुड़ा हुआ है कि भाई जी को ऐसी खुमारी चढ़ी कि ये गुरु देव की छाया बन कर मंडराते रहे। गुरु जी जो कुछ कहते, जो कुछ करते और आश्रम में आगन्तुकों से जो वार्तालाप करते, तथा आराध्य देव जी जिस पर जो कृपा करते, जो आशीर्वाद देते, सब का सब रघुराज जी अपने हृदय में अंकित करते रहते थे। भाई जी गुरुदेव से पिता–पुत्र की तरह खुल कर बात करते थे। समय चक्र के साथ जब कुछ बड़े हुए तो श्री रघुराज ने श्री गुरुचरणों में प्रार्थना किए कि गुरुजी एक दिन आपने कहा था कि जब गुरु अपने शिष्य को अति उत्साहित मन से दीक्षा देता है तो वह दीक्षा निराली ही होती है। अत: कृपा करके मुझे आप वही निराली दीक्षा दीजिएगा। आप भी यहीं आश्रम में हैं और मैं भी आश्रम अथवा घर में हूँ। ऐसे होनहार लाड़ले के लिए दयालु गुरुदेव जी ने सहज ही मुस्कान से स्वीकृति प्रदान कर दी।

"गुरु वचन पलटे नहीं पलट जाए ब्रह्माण्ड"

सूर्य नारायण अपने नियम से उदय– अस्त होता रहा। एक दिन वो समय आ ही गया जब त्रिलोकी नाथ ने एक ब्रह्मचारी जी को रघुनाथ को आश्रम में बुला लाने का आदेश दिया। ब्रह्मचारी जी संवाई स्थित उसके आवास पर पहुँचा तो पता लगा कि रघुनाथ तो खेत में गया है। ब्रह्मचारी जी खेत में गए और सिद्धेश्वर जी का आदेश सुना कर शीघ्रातिशीघ्र उसे

अपने साथ आश्रम ले आए। भाई जी ने गुरुदेव को प्रणाम किया और आज्ञा की प्रतीक्षा की। आशुतोष भगवान नेआज्ञा दी कि लल्ला तुम शीघ्र अपना गर्दा मिट्टी उतार कर शुद्ध हो कर आओ, तुमको अभी दीक्षा देनी है। इसी के साथ–साथ ब्रह्मचारी को आज्ञा दी कि तुम इसकी दीक्षा की तैयारी करो।

ब्रह्मचारी जी ने शीघ्रता से पुष्प, अक्षत आदि दीक्षा का सामान इकट्ठा कर गुरु देव से निवेदित किया कि भगवन सब सामान तैयार हो गया है। तब तक गुरुजी का यह भाग्यशाली लाड़ला लल्ला रघुराज भी आ गया। तदनन्तर जब भाग्य विधाता गुरुदेव भगवान दीक्षा देने लगे तब गुरुदेव भगवान के आत्मज ह्रदय के टुकड़े रघुराज ने श्री चरणों में प्रार्थना की कि भगवन जो मन्त्र अखिल ब्रह्माण्ड नायक अन्तार्यामी योग योगेश्वर दादा जी महाप्रभु श्री रामलाल महाराज जी ने आपको दिया था, मुझे वही मन्त्र देने की कृपा करें। यह सुन कर गुरुदेव ऐसे मुस्काए, जैसे कि यही प्रार्थना सुनने को उत्सुक थे। अतः तुरन्त बोले, हाँ लल्ला मैं वही मन्त्र दूँगा और श्री रघुराज को दीक्षा दे कर माला माल कर दिया।

इससे पहले योगावतार जी ने अपने सुयोग्य शिष्य रघुराज को हारमोनियम पर गाने बजाने का सफल आशीर्वाद दिया था जो भाई जी का आज तक रुचिकर प्रसाद है। इसके अतिक्ति रघुराज को एक गुप्त मन्त्र भी दे रखा है जिससे हर किसी को रोग दोष, आधि–व्याधी से मुक्ती मिल सकती है। हमारे आदरणीय गुरु भाई श्री रघुराज के भण्डार में एक और दुलर्भ मन्त्र है जिससे, गुरु देव के लीलावसान के पश्चात जिस समय गुरु दर्शन की ललक उठे तो गुरुदेव भगवान स्थूल रूप से दर्शन देने की अवश्य कृपा कर देते हैं।

भाई जी ने उदाहरण देते हुए बतलाया कि एक दिन जब मैं भजन गाने के उद्देश्य से गुफा में से नीचे झुक कर के हरमोनिया निकाल रहा था तो अचानक मेरी पीठ पर एक थपकी पड़ी। मुझे समझते देर न लगी कि ऐसी थपकी मात्र गुरु देव भगवान की ही हो सकती है। मैंने हरमोनिया निकालते–निकालते कहा कि गुरुदेव अगर दर्शन देने ही हैं तो सामने से देने की कृपा करें, जिसकी मुझे कई दिनों से लालसा है। मेरा भाग्य चमक गया कि तत्काल गुरुदेव भगवान स्थूल रूप से प्रकट हो गए। मैंने चरण वन्दन किया और गुरु जी के चरणों को ऊपर तक यों दबा–दबा कर देखा कि जिस शरीर का हम नील धारा हरिद्वार में संस्कार करके आए थे, वह शरीर पुनः देख रहा हूँ ? असली है या कुछ और है ? घट– घट के जाननहार गुरु देव बोले, क्यों लल्ला जाँच कर रहा है ? अच्छी तरह परख ले, असली हूँ या नहीं। अगर फिर भी तुझे कोई शंका है तो अपने सैकड़ो रूप बनाकर दिखा दूं ? भाई जी कुछ सकुंचा कर बोले, नहीं गुरु जी आप तो सर्व समर्थ हैं।

गुरुजी ने कहा कि लल्ला मैं अब बहुत व्यस्त हो गया हूँ, तुम बिना आवश्यकता के नहीं बुलाया करो ताकि किसी और के कार्य में बाधा न पड़े। श्री रघुराज ने कहा गुरु जी पता

नहीं क्यों, कई दिनों से मेरी दर्शन करने की लालसा बनी हुई थी। गुरु जी ने श्रीमुख से कहा कि हाँ लल्ला मैंने तुम्हें एक महामन्त्र दिया था. उसके जाप से तुम मुझे तत्काल बुला सकते हो। भाई जी ने कहा हाँ गुरुदेव दिया था मगर मैं वह मन्त्र भूल गया हूँ, कृपया पुनः बताने की कृपा करें। आराध्य देव जी ने उसे तुरन्त वह मन्त्र बता दिया और कहा लल्ला अब मत भूलना। भाई जी कहाँ चूकने वाले थे बोले, गुरुदेव मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि मैं यह मन्त्र कभी न भूल पाऊँ। भक्त वत्सल गुरुदेव तथास्तु कह कर तुरन्त अन्तर्ध्यान हो गए।

मुझे द्वारिका धाम की याद आती है कि भगवान श्री कृष्ण जी महाराज (गुरुदेव) ने सुदामा (रघुराज) को देने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। ऐसे बरसे मेरे गुरुदेव।

आत्म विश्वास अर्थात् स्वयं अपने में विश्वास करना एक कला है जो निरन्तर के अभ्यास से प्राप्त होती है। आत्म विश्वास से परिपूरित व्यक्तित्व स्वयं को दूसरों की दृष्टि में अधिक अच्छे ढंग से प्रस्तुत करता है। उठने-बैठने, चाल-ढाल, बोलचाल, मुस्कराने, कार्य-कलाप, चिन्तन-मनन में प्रतिक्षण जागरूक रहने तथा स्वच्छता अपनाने से आत्म विश्वास की उपलब्धि होती है। यही सफल जीवन की कुंजी है।

श्री मद्भागवत में योग-परिचर्या

– डॉ. विजय सिंह

पिछले लेखों में प्रचेताओं को भगवान महादेव जी द्वारा योगादेश के परिणाम स्वरूप श्री हरि का दर्शन एवं अभीष्ट वरदान प्राप्त करने की कथा कही गयी है। अन्त समय में वे सभी जाजलि मुनि ने जहाँ सिद्धि प्राप्त किया था उस समुद्र के पश्चिम तट पर जाकर अपने प्राण, मन, वाणी और दृष्टि को वश में करके तथा शरीर को निश्चेष्ट स्थिर और सीधा रखते हुये आसन को जीत कर चित्त को विशुद्ध परब्रह्म में लीन कर दिया –

तान्निर्जित प्राणमनोवचोदृशो

जितासनान् शान्त समान विग्रहान्।

परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मन:

सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारद: ।।3।। स्कं 4, अ 31

उस समय अकस्मात श्री नारद जी वहाँ प्रकट हुये। प्रचेताओं ने उनका आदर सत्कार किया। प्रचेताओं द्वारा परम कल्याण के बारे में पूछने पर श्री नारद जी ने कहा – समस्त कल्याणों की अवधि आत्मा ही है। आत्मज्ञान प्रदान करने वाले श्री हरि ही सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा है। बहु–भाँति तात्विक ज्ञान श्री नारद जी ने प्रचेताओं को दिया। प्रचेतागण परम प्रभु को प्राप्त हुये। इसके साथ ही चौथा स्कन्ध समाप्त हुआ।

पंचम स्कन्ध के प्रथम अध्याय में उत्तानपाद के छोटे भाई प्रियव्रत का चरित्र वर्णन किया गया है। राजा परिक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा– भगवन ! महाराज प्रियव्रत ने स्त्री, घर और पुत्रादि में आसक्त रहकर भी किस प्रकार सिद्धि प्राप्त करली और क्यों कर उनकी भगवान में अविचल भक्ति हुई ?

श्री शुकदेव जी ने कहा – राजन ! प्रियव्रत, श्री नारद जी के चरणों की सेवा करने से सहज परमार्थतत्व का बोध पा गये थे। परन्तु पिता मनु ने उन्हें राज्य शासन के लिये आज्ञा दी। इधर अखण्ड समाधि योग के द्वारा अपनी इन्द्रियों और क्रियाओं को प्रियव्रत भगवान वासुदेव में लगा चुके थे। प्रियव्रत ने पिता की आज्ञा को प्रथमत: स्वीकार नहीं किया।

यर्हि वावह राजन् स राजपुत्र: प्रियव्रत: परम भागवतो

नारदस्य चरणोपसेवयाञ्जसावगत परमार्थसतत्त्वो ब्रह्म सत्रेण

दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपाल नायाम्नातप्रवर गुणगुणै कान्त भाजन

तया स्वपित्रोपामन्त्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधान

समाधि योगेन समावेशितसकल कारकक्रियाकलापो नैवाभ्य

नन्दयद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं तदविकरण आत्मनोऽन्य

स्माद सतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाया: ॥6॥ स्क 5.अ.1

परन्तु श्री ब्रह्माजी द्वारा यह कहने पर कि तुम्हारे हरि प्रेम में बाधा नहीं आयेगी और हम सभी यहाँ तक कि तुम्हारे गुरू नारद भी उनके ही विधान से बँधे हुये हैं। उस विधान को कोई देहधारी न तो तप, विद्या, योग बल, बुद्धिबल से ही टाल सकता है।

न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा

न योगवीर्यण मनीषया वा ॥12॥स्क 5.अ.1

त्रीलोकी के गुरू श्री ब्रह्मा जी के समझाने पर प्रियव्रत ने सिर झुका " जो आज्ञा " कह कर उनकी आज्ञा शिरोधार्य किया। अब महाराज प्रियव्रत श्री गुरूदेव नारद जी के स्वीकृति से भूमण्डल का राज्य शासन करने लगे। प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री वर्हिष्मती से विवाह किया। दस पुत्र इनमें कवि, महावीर और सवन ये बाल्यावस्था से आत्मविद्या का अभ्यास करते हुये निवृत्ति परायण हुये। महाराज प्रियव्रत की दूसरी पत्नी से उत्तम, तामस और रैवत नाम के पुत्र उत्पन्न हुये। सम्पूर्ण भोगों को भोगते हुये भी उनमें तनिक आसक्त नहीं थे। एक मात्र कन्या ऊर्जस्वती का विवाह शुक्राचार्य जी से किया जिससे देवयानी का जन्म हुआ। राजा प्रियव्रत ने जो कर्म किया उसे सर्व शक्तिमान् ईश्वर के सिवा कौन कर सकता है ? वे सद्गुरू नारद जी के प्रेमी भक्त थे। उन्होंने पाताल लोक के, देवलोक के, मृत्युलोक के तथा कर्म एवं योग की शक्ति से प्राप्त हुये ऐश्वर्य को नरक तुल्य समझा।

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् ।

यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजन प्रिय: ॥41॥ स्क 5.अ.1

पंचम स्कन्ध के दूसरे अध्याय में प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र का चरित्र वर्णन किया गया है। इन्होंने सुपुत्रप्राप्ति हेतु मन्दराचल पर श्री ब्रह्मा जी की उपासना किया। ब्रह्माजी ने अपनी सभा की गायिका पूर्वचित्ति नाम की अप्सरा को राजा के पास भेज दिया। राजा आग्नीध्र उस अप्सरा के मोह जाल में फँस गये। इसी अप्सरा के गर्भ से नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत रम्यक, हिरण्यमय, कुरु, भद्राश्च और केतुमाल नाम के नौ पुत्र उत्पन्न किये। इस अध्याय में यह बताया गया है कि आग्नीध्र भोगों में रमने के कारण मृत्यु पश्चात पितृलोक को प्राप्त हुये।

तीसरे अध्याय में आग्नीध्र के पुत्र नाभि की कथा कही गयी है। इनको कोई पुत्र नहीं था। अत: पुत्रेष्ठि यज्ञ द्वारा यज्ञ नारायण को प्रसन्न करने हेतु प्रयत्न-रत रहे। अकस्मात स्वयं नारायण प्रकट हुये और बोले- मैं स्वयं ही अपनी अंशकला से नाभि के यहाँ अवतार लूँगा। महारानी मेरुदेवी के गर्भ से ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रकट करने हेतु शुद्ध सत्वमय विग्रह से प्रकट हुये।

चतुर्थ अध्याय में ऋषभ देवजी की कथा विस्तार से वर्णित है। नाभिनन्दन ऋषभ जी स्वायं नारायण के अवतार थे। उनमें समता, शांति, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि महाविभूतियाँ

विद्यमान थी। अतः मंत्रियों से मंत्रणा कर उन्हें ही पृथ्वी का शासन राजा ने सौंप दिया। एक बार इन्द्र ने ईर्ष्यावश उनके राज्य में वर्षा नहीं किया। तब योगेश्वर भगवान ऋषभ ने इन्द्र की मूर्खता पर हँसते हुये अपनी योगमाया के प्रभाव से खूब जल बरसाया।

तस्य हीन्द्रः स्पर्धमानो भगवान वर्षे न ववर्ष तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ।।3।। स्क.5,अ.4

राजा नाभि अपनी पत्नी मेरुदेवी के साथ बदरिकाश्रम को चले गये। वहाँ तपस्या और समाधि योग द्वारा भगवान वासुदेव के नर–नारायण रूप की आराधना करते हुये समय आने पर उन्ही के स्वरूप में लीन हो गये।

विदिता नुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षा यामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ।। 5।।

स्क.5,अ.4

ऋषभ देव जी ने देवराज इन्द्र की कन्या जयन्ती से विवाह किया उनके सौ पुत्र हुये। जिनमें महायोगी भरत जी सबसे बड़े और धर्मज्ञ थे। उन्हीं के नाम से लोग अजनाभखण्ड को भारतवर्ष कहने लगे।

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठ गुण आसीद्येनेदं वर्ष भारतमिति व्यपदिशन्ति ।।9।।

स्क.5,अ.4

पाँचवे अध्याय में, श्री ऋषभ जी द्वारा अपने पुत्रों को उपदेश देने तथा स्वयं अवधूत वृत्ति ग्रहण करने की कथा कही गयी है। ऋषभ देवजी ने अपने पुत्रों को उपदेश देते हुये कहा कि– महापुरुषों की सेवा से मुक्ति तथा स्त्री संगी कामियों के संग से नरक प्राप्त होता है। महापुरुष के लक्षण बताते हुये बोले– जो समानचित्त, परमशान्त, क्रोधहीन, सबके हितचिन्तक तथा सदाचारी हों। उन्हें महापुरुष जानो। पुत्रों ! जीव को सभी योनियों में दुःख ही उठाना पड़ता है। अतः तत्व जिज्ञासा से, तप से, वैरत्याग से, समता से, शान्ति से, शरीर में ममत्व न होने से, एकान्त सेवन से, प्राण, इन्द्रिय और मन के संयम से, पूर्ण ब्रह्मचर्य से, कर्तव्य कर्मों में निरन्तर सावधान रहने से, वाणी के संयम से, सर्वत्र मेरी ही सत्ता देखने से, अनुभव ज्ञान सहित तत्व विचार से और योगसाधन से अहंकाररूप अपने लिङ्गशरीर को लीन कर दे–

सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन
ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ।
योगेन धृत्युद्यमसत्त्व युक्तो
लिङ्गं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ।। 13।। स्क.5, अ.5

पुत्रों ! जो अपने प्रिय को भगवद्भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु की फाँसी से नहीं छुड़ाता,

वह गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है।

आगे चलकर भगवान ऋषभदेव ने देखा कि यह जनता योग साधना में विघ्न रूप है और तब विकट रूप में अजगर वृत्ति धारण कर लिया। परमहंसों को त्याग के आदर्श की शिक्षा देने के लिये कई तरह की योगचर्याओं का आचरण ऋषभदेव जी ने किया है। उनके पास आकाशगमन, मनोजवित्व, अन्तर्धान, परकाय प्रवेश, दूर की बातें सुन लेना, दूर के दृश्य देखलेना आदि सिद्धियाँ अपने आप ही सेवा करने को आयीं परन्तु वे उन्हें मन में ग्रहण नहीं किया –

इति नानायोगचर्याचरणो भगवान कैवल्यपति ऋषभोऽविरत परम महानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरो दर भावेन सिद्ध समस्तार्थपूर्णो योगेश्वर्याणि वै हायस मनोजवान्तर्धान परकाय प्रवेश दूर ग्रहणादीनी यदृच्छ योप शतानि नाञ्सा नृप हृदयनाम्यनन्दत् ।। 35।।

स्कं 5, अ 5

श्री प्रभु चरण प्रसाद

लेखक– ओम प्रकाश तिवारी, मुंबई

लेखक का दैनिक जागरण में प्रतिदिन सम्पादकीय पृष्ठ पर ' जन पथ शीर्षक के अन्तर्गत एक छन्द छपता है।

ऋषि मौदगल्य प्रवर आंगिरस, चैत्र शुक्ल नवमी को हुये रामलालजी श्री गंगाराम जी का हुआ उन्नत था मालजी पालने में पाँपूच के जो दिखने लगे, देखि-देखि उन्हें पूरा कुल था निहाल जी,ऐसे प्रभु रामलाल जी के भक्त आज, गाते नहीं थकते चरित्र वो विशाल जी।

श्री गुरु महिमा एवं गुरुमंत्र

– हेमराज चौपड़ा, मंडी

ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवल ज्ञानमूर्तिम,
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं तत्वमस्यादि लक्ष्यम।
एकं नित्यं विमलंअचलं सर्वदा साक्षिभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहित सद्गुरुं तं नमामि ।।

ब्रह्मानन्द स्वरूप परम सुख के देने वाले, केवल ज्ञानमूर्ति इन्द से परे आकाश के समान सर्वव्यापि,तत्वमसि आदि महावाक्य के लक्ष्य, एक नित्य, निर्मल, अचल सदा साक्षि स्वरूप, भाव से अतीत तीनो गुणों से रहित, उन सद्गुरुदेव को नमस्कार है।

गुरु स्वयं में एक दिव्य शब्द है। 'गु' शब्द गुह्यतम घना अंधकार एवं " रु' उसका निरोध यानि ज्योति अथवा प्रकाश। अर्थात जो अज्ञानरूपी अंधकार से ज्ञान रूप प्रकाश की ओर ले जाते हैं, वे ही हैं शरीरधारी लोक गुरु। परमहंस रामकृष्ण जी कहते हैं सच्चिदानंद ईश्वर ही एकमात्र गुरु, पिता, कर्ता सभी कुछ है। मनुष्य की क्या क्षमता जो स्वयं संसार बंधन से मुक्त हो सके। सच्चिदानंद ईश्वर को छोड़कर ऐसी सामर्थ्य और किसी में नहीं है। यदि गुरु मनुष्य रूप में चैतन्य करता है तो समझना साक्षात सच्चिदानंद ईश्वर ही गुरुरूप धारण करके हमारे उद्धार हेतु इस धरा पर अवतरित हुए हैं। गुरु सेतु जैसा हाथ पकड़कर उस पार ले जाते हैं। हमारे अन्तर्मन से अज्ञान रूपी अंधकार को हटाकर ज्ञान का प्रकाश करते हैं। इसलिए उन्हें मनुष्य समझना उचित नहीं। उन्हें साक्षात ईश्वर ही समझना चाहिए। यदि हम ऐसा विश्वास कर सकें तो अभीष्ट की प्राप्ति कुछ भी कठिन नहीं। मन में सद्गुरुदेव के प्रति पूर्ण भक्ति, निष्ठा, श्रद्धा एवं विश्वास होना चाहिए।

निषाद पुत्र एकलव्य का उदाहरण हमारे सामने है। उसने कौरव–पांडवों के गुरु द्रोणाचार्य से अस्त्र शस्त्र विद्या सीखने की इच्छा प्रकट की। किन्तु आचार्य द्रोण केवल राजपुत्रों को ही शस्त्र विद्या सिखाते थे अतः उन्होंने एकलव्य को शिष्य रूप में स्वीकार नहीं किया। परन्तु एकलव्य ने हार नही मानी। वह द्रोण की मृन्मयी मूर्ति तैयार कर उसके समक्ष एकनिष्ठ होकर शस्त्र विद्या का अभ्यास करने लगा एवं परिणामस्वरूप इसमें आद्वितीय होकर प्रसिद्धि प्राप्त की। इससे प्रमाणित होता है कि यदि शिष्य में अव्यभिचारिणी निष्ठा एवं अविचल श्रद्धा है तो कार्यसिद्धि अवश्यम्भावी है। गुरु कृपा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करती ही करती है। जिन्हें इसका ज्ञान है जो संसार सागर से पार उतरने की इच्छा रखते हैं, हर प्रकार से गुरुदेव के सान्निध्य की आकांक्षा रखते हैं और गुरुदेव की प्राप्ति के लिए कठिन से कठिन उपाय करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं, उन्हें सफलता अवश्य ही मिलती है।

परमहंस योगानन्द जी की आत्मकथा में वृतांत आया है कि एक अवसर पर महावतार बाबा जी (जिन्हें सद्गुरुदेव अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने गुरुदेव प्रभु रामलाल महाराज का ही अवतार मानते हैं) की पवित्र साधु मंडली के समक्ष एक अपरिचित व्यक्ति आकर खड़ा हो गया। वह पास के दुर्गम पर्वत पर चढ़कर वहाँ पहुँचा था। " महाराज आप निश्चय ही महान बाबा जी हैं ", उस व्यक्ति का चेहरा अवर्णनीय श्रद्धा से दमक रहा था, " मैं आपकी खोज में महीनों भटकता रहा हूँ आपसे इतनी प्रार्थना है कि मुझे शिष्य रूप में ग्रहण करें "। जब बाबा जी ने कोई उत्तर नहीं दिया तब उस व्यक्ति ने नीचे की गहरी खोह की ओर संकेत करते हुए कहा " यदि आप मुझे अस्वीकार करेंगे तो मैं इस पर्वत पर से कूद पड़ूँगा, मेरा जीवित रहना व्यर्थ है, यदि भगवद् प्राप्ति के लिए मैं आपका मार्गदर्शन पाने के योग्य नहीं। " " फिर कूदो ", बाबा जी ने तटस्थता से कहा, " मैं तुम्हें विकास की तुम्हारी वर्तमान अवस्था में स्वीकार नहीं कर सकता "। उस व्यक्ति ने उसी क्षण पहाड़ पर से नीचे छलांग लगा दी। बाबा जी ने चकित शिष्यों को उस अपरिचित व्यक्ति का शव उठा लाने का आदेश दिया। शिष्य उसके क्षत विक्षत लोथड़े जैसे शरीर को लेकर लौटे। बाबा जी ने उस मृतक के सिर पर हाथ रखा। परम आश्चर्य।

उसने आँखें खोल दी और सर्वशक्तिमान गुरु के चरणों में गम्भीर भाव से साष्टांग प्रणाम किया। बाबा जी ने पुनर्जीवित व्यक्ति की ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखते हुए कहा " अब तुम शिष्य बनने के अधिकारी हो गए हो। तुमने साहस के साथ कठिन परीक्षा में सफलता प्राप्त की है। अब मृत्यु तुम्हारा पुनः स्पर्श नहीं करेगी। इस अमर साधु मंडली में अब तुम भी सम्मिलित हो गए हो। "

पूर्व में पवित्र योग मार्ग में प्रवेश हेतु इसी प्रकार की कठिन परीक्षा में से होकर गुजरना पड़ता था। यह हमारा परम सौभाग्य है कि सद्गुरुदेव जी ने सहज में ही अपनी चरण रज हमें प्रदान करने की अनुकम्पा की है। अनगिनित दोषों के रहते भी हमें अपनी शरण में ले लिया है। अपनी शरण में आए हुए अधम से अधम प्राणी को भी निराश नहीं किया है।

मण्डी हिमाचल के वरिष्ठ गुरुभाई एवं गुरुनिष्ठ श्री हरिसिंह जी जिन्हें दीर्घकाल तक सद्गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरण कमलों का दीर्घकाल तक सान्निध्य प्राप्त हुआ है, बताते हैं कि एक बार एक व्यक्ति श्री सद्गुरुदेव जी के समक्ष आया कि मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें। उसका आहार विहार कुछ भी उपयुक्त नहीं था। श्री गुरुदेव जी ने उस व्यक्ति को कुछ क्षण निहारा। समीप बैठे सभी को लग रहा था कि कम से कम इस व्यक्ति को सद्गुरुदेव स्वीकार नहीं ही करेंगे, किन्तु तब सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने उस व्यक्ति को अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया। कुछ समय बाद जब इस विषय पर चर्चा चली तो सद्गुरुदेव महाराज का कहना था " लल्ला, धोबी के पास कोई कैसा भी मैला कपड़ा लाता है तो वह उसे धोने से इन्कार करता है क्या ? हम भी धोबी का ही काम तो करते हैं। समीप बैठे सभी गुरु भाई अवाक रह गए यह सुनकर । ऐसी उदारता क्या कहीं अन्यत्र देखने

को भी मिलेगी।

यही नहीं अपनी शरण में लेने के उपरान्त भी अपने बच्चों पर उनकी दृष्टि हमेशा रहती ही रहती है। एक अवसर पर सद्गुरुदेव महाराज ने अपने मुखारविंद से स्वयं कहा कि देखो, जो भी व्यक्ति हमारे सम्मुख आता है, उसके तीन जन्मों का वृतान्त हमें तुरन्त ज्ञात हो जाता है। उन जन्मों के उसके भले–बुरे कर्मों का पूरा–पूरा ज्ञान हमें तुरन्त हो जाता है। इसीलिए सद्गुरुदेव अपने शिष्यों पर आने वाली विपत्तियों के निराकरण हेतु प्रयासरत रहते हैं। कभी उनके निकृष्ट कर्मों के भुगतान हेतु शिष्यों को कठिन परीक्षा में भी उतारते हैं किन्तु अहित नहीं होने देते। तभी तो कहा गया है –

गुरु कुम्हार एक जात, गढ़ गढ़ काढ़े खोट,
अंतर हाथ सहारा दे, बाहर मारे चोट।

किसी भी क्षेत्र में अग्रसर होने के लिए लौकिक गुरु की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार पुत्र हीन स्त्री, दूध विहीन गाय, चन्द्र विहीन आकाश, फल हीन तरू, जल विहीन नदी व्यर्थ है, उसी प्रकार गुरु मंत्र दीक्षा विहीन मनुष्य शरीर भी व्यर्थ ही समझना चाहिए। गुरुदेव मंत्र द्वारा शिष्य के हृदय में प्रवेश करते हैं। इसी के द्वारा गुरु–शिष्य का सम्बन्ध स्थापित होता है। इसी मंत्र के माध्यम से गुरु की शक्ति शिष्य में आती है, इसी के द्वारा गुरुदेव अपने शिष्य के मनोविकारों को हरने का प्रयास करते हैं व उसकी आध्यात्मिक उन्नति में सहयोग करते हैं। इसके लिए शिष्य के मन में गुरुदेव के प्रति पूर्ण आदर भक्ति एवं श्रद्धा का होना आवश्यक है। जिनकी परमात्मा के प्रति प्रगाढ़ भक्ति है और वैसी ही भक्ति गुरुदेव के प्रति भी है, उनके हृदय में उपनिषद् गूढ़ तत्व–समूह स्वयं प्रकाशित होता है तभी तो शास्त्रों में कहा गया है –

यस्य देवे पराभक्ति, यथा देवे तथा गुरौ,
तस्येते कथिताह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:।

यहाँ एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है। केवल मंत्रदीक्षा लेने से ही लक्ष्य तक पहुँच पाएँगे, यह कदापि सम्भव नहीं। आवश्यक है गुरुदेव एवं गुरुमंत्र के प्रति अविचल श्रद्धा। शिष्य इसी श्रद्धा एवं गुरुदेव की आज्ञानुसार आचरण करने के बल पर अपने लक्ष्य को पा जाता है। तभी तो भगवान श्री कृष्ण मद्भगवद्गीता में स्पष्टता से कह रहे हैं –

श्रद्धावान लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधि गच्छति ।।

जितेन्द्रिय, साधन परायण और श्रद्धावान पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब के तत्काल ही भगवद्प्राप्ति रूप परम शांति को प्राप्त हो जाता है। सद्गुरुदेव प्राय: कहा करते हैं श्रद्धा योग की जननी है। अविचल श्रद्धा से जपा हुआ गुरुमंत्र निश्चय ही साधक को योग की उच्च श्रेणी में ले जाता है। फिर वह गुरुमंत्र चाहे जैसे भी उच्चरित हो।

एक गाँव में तीन अंतेवासी रहते थे। प्रातः उठकर वे जिस मन्त्र का उच्चारण करते थे वह था ' हे ईश्वर, हम तीन, तुम तीन, हमारी रक्षा करो। ' एक अवसर पर वहाँ पादरी आए। पादरी ने उन्हें यह मंत्र उच्चरित करते देखा, तो उन पर दया आ गई। भला यह भी कोई मंत्र हुआ। उनको एक नया आसान – सा मंत्र दिया। दूसरे दिन पादरी उनसे विदा लेकर नाव द्वारा चल दिए। अभी वे कुछ ही दूरी पर गए थे कि उन्होंने देखा एक प्रकाश पुंज उनकी नाव की ओर आ रहा है। निकट आने पर देखा कि वे तीनों अंतेवासी नदी के पानी पर दौड़कर उनकी ओर आ रहे है। पास आकर उन्होंने कहा, ' श्रीमान्, आप द्वारा बताया मंत्र हमें विस्मृत हो गया है। कृपया फिर से बताने की कृपा करें। पादरी महोदय पहले ही आश्चर्य चकित थे कि जिस मंत्र को उन्होंने तुच्छ समझा था, उसी के बल पर वे इस स्थिति में पहुँच गए थे कि जल पर चलने के योग्य हो गए थे। उन्होंने उन अंतेवासियों को अतीव सम्मान की दृष्टि से देखा और अपने उसी मंत्र का जाप करने को कहा ।

तात्पर्य यह कि यदि गुरुदेव के प्रति एवं उनके द्वारा प्रदत्त गुरुमंत्र के प्रति अतीव श्रद्धा है तो इसी श्रद्धा के बल पर शिष्य अपने लक्ष्य को पा जाता है। यह हमारा परम सौभाग्य नहीं तो और क्या है जो हमें ऐसे सर्व समर्थ गुरुदेव प्राप्त हुए है जो सर्वशक्ति सम्पन्न हैं; ' कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं ' की सामर्थ्य रखते है। ऐसे सद्गुरुदेव की चरण शरण ग्रहण करने व उनके दिए हुए आदेश की परिपालना के बल पर क्या हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम नहीं होंगे? *बतलाइए तो !*

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयोवृद्धः सन् किं करिष्यति।
स्वगात्राण्यापि भाराय भवन्ति हि विपर्य्यये।।

–योग वाशिष्ठ

जो कल्याणकारी वस्तु है उसे आज ही प्राप्त करने का प्रयत्न करें। वृद्ध होने पर क्या कर सकोगे। उस समय अपना शरीर ही अपने को भार रूप जान पड़ता है और शुभ कर्म करने के लिए उपयुक्त नहीं रहता।

मानस के संत

– पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

परम वीत रागी गोस्वामी जी ने मानस में संतों की तुलना विभिन्न वस्तुओं से की है। संत कौन है ? उसको बताते हुए उन्होंने कहा–

विगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुरितायन ।

सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ।।

अर्थात् जिसके पास किसी भी प्रकार की कोई कामना नहीं है। जो मात्र नाम का स्मरण करते है। शान्ति, वैराग्य, विनय और जो प्रसन्नता के धाम है। उनमें स्वाभाविक शीतलता, सरलता सबके प्रति मित्र भाव तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रीति होती है। जो धर्म को उत्पन्न करने वाली है।

संत समाज के लिए बोहित (जहाज) की तरह है। संतों का कार्य एवं व्यवहार सहज अनुकरणीय होता है। संत की परिभाषा करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने कहा कि " संत हृदय नवनीत समाना " संतों का हृदय मक्खन की तरह तरल,सरल, एवं कोमल होता है। परन्तु गोस्वामी जी ने कहा कि यह तो कवियों ने कहा है। लेकिन वे शायद ठीक से कह नही पाये। क्योंकि मक्खन को जब ताप पर रखा जाता है। वह तब अपने प्राप्त दुःख के फलस्वरूप पिघलता है । किन्तु संत दूसरों के दुःख को देखकर स्वयं पिघलते हैं। संत समाज के दुःख को देखकर उसे दूर करने के लिए अपनी बाजी लगाकर समाज के कष्ट को दूर करते हैं। कलिकाल मे जन्म लेने वाले प्राणी का कर्त्तव्य कौए के समान तथा वेष मोर के समान है। कलियुगी जीव इस जगत में दिखावा अधिक करता है। जिससे वह पीड़ित और दुःखी भी रहता है। तुलसीदास जी ने ऐसे ही समाज को चैतन्य करने के लिए मानस में संत के अनुकरणीय चरित्र के बारे में विस्तृत रूप मे बताया है।

संतों का स्वभाव सरल एवं संसार के कल्याण के लिए ही होता है। ऐसे संतों का प्रादुर्भाव उस पृथ्वी पर समय–समय पर होता रहता है। जिससे सृष्टि का व्यापार सामान्य गति से होता रहता है। मानस में गोस्वामी जी ने संतों के विभिन्न प्रकार बताते हुए, उनके चरित्र को सर्व समाज के कल्याणार्थ बताया है। संत इस समाज में चलते–फिरते तीर्थराज प्रयाग के समान हैं। वे सबको आनन्द प्रदान करते हुए कल्याण के भागी बना देते हैं। संत वस्तुतः वीत रागी होते हैं। योगदशर्न में एक सूत्र है – *" वीतराग विषयं वा चित्तम् "* अर्थात् ऐसे पुरुष जिसका सबके प्रति राग समाप्त हो गया है। उसके चित्त में अपने चित्त को स्थिर करने वाला जीव अपना हर प्रकार से कल्याण कर सकता है। क्योंकि संत स्वाभाविक रूप से राग रहित होते हैं। वे इस

सोम की नश्वरता को समझते हुए, उसके प्रति कोई राग (प्रेम) नहीं रखते हैं। उनका लक्ष्य आत्मकल्याण करते हुए विश्व कल्याण की भावना रहती है। वस्तुत: जब तक व्यक्ति स्वयं को आत्म कल्याण का भागी नही बना पाता है। तो वह कैसे दूसरे के आत्म कल्याण की बात कर सकता है। ऐसा उदाहरण संसार में मिलेगा, जो आत्म कल्याण के साथ दूसरों का भी उत्थान किया है।

आत्म कल्याण भी आध्यात्मिक पूँजी होती है। जब तक जीव स्वयं गुरु कृपा के साधन द्वारा आत्म कल्याण रूपी आध्यात्मिक पूँजी इकट्ठा नहीं कर लेता है। तब तक वह स्वयं कंगाल रहता है। अथवा उसकी स्थिति उसी प्रकार होती है जैसे–अन्धेन नीयमाना यथा अन्धा ' अर्थात् जिस प्रकार एक अंधे को पकड़कर दूसरा अन्धा रास्ता तय करता है। दोनों अपने गन्तंव्य तक पहुँच पायेंगे अथवा कूप में गिरेगें। दोनों को पता नहीं रहता है।

संत वस्तुत हंस की तरह होते हैं जैसे हंस जल मे मिले हुए दूध को आसानी से ग्रहण कर लेता है। वह दूध में मिले हुए जलरूपी विकार को छोड़ देता है। संत स्वाभाविक रूप से अपने को छिपाये रखते है। संसार के सम्मुख वे किसी भी प्रकार का आडम्बर या शक्ति प्रदर्शन न ही करते है। हमारे पूर्व वीतरागी महापुरुषों ने अपनी आत्मिक शक्ति का किसी भी प्रकार से क्षरण नहीं होने दिया है। किन्तु संसार के कल्याण के लिए वे सदैव तत्पर रहे हैं। गोस्वामी जी ने कहा कि– " चंदन तरु हरि संत समीरा " अर्थात् श्री हरि चंदन के वृक्ष के समान तो संत इस वृक्ष से उठने वाली वायु के समान हैं। जो सर्वत्र शीतलता प्रदान करते हुए सबको सुखी बनाते है। इसीलिए समस्त साधनों का फल बिना संत बने नहीं पाया सकता है।

संत इस पृथ्वी पर देवता के समान होते है। जो ज्ञान की विभिन्न धारा का प्रयवर्तन कर लोक कल्याण करते रहते हैं। किन्तु सामान्य जन इस रहस्य को समझ नहीं पाते है। मानस में गरुड़ जी विभिन्न प्रकार की अपनी शंकाओं का समाधान वीतरागी ऋषि लोमष से करते है। उनके समस्त शंकाओं का समाधान करते हुए संतों के बारे में भी बताया कि–

नहि दरिद्र सम दु:ख जगमाही। संत मिलन सम सुख जग नाही ।।
पर उपकार वचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया ।।
संत सहहिं दुख परहित लागी। पर दु:ख हेतु असंत अभागी ।।
भूर्ज तरु सम संत कृपाला। परहित निति सह विपति विसाला ।।

अर्थात् इस संसार में दरिद्रता के समान कोई दु:ख नही है संतो के मिलन के समान सुख इस संसार में नहीं है। मन वचनऔर शरीर से परोपकार करना संतों का सहज स्वभाव होता है। दूसरों के कल्याण हेतु वे सदैव दु:ख सहते हैं। इसके विपरीत असंत सदैव दूसरों को पीड़ा ही देते फिरते है। संत की तुलना भोज पत्र से करते हुए कहा कि – जिस प्रकार भोज वृक्ष से उसकी खाल निकाल कर भोज पत्र बनाया जाता है, उसी प्रकार संत दूसरों की भलाई के लिए बड़ी से बड़ी विपत्ति का सहन परउपकार के लिए करते रहते हैं। इसीलिए संत की तुलना

गोस्वामी जी ने देवता से किया है।

व्यक्ति को इसीलिए संतों के साथ सत्संग करना ही चाहिए। जिससे अज्ञानता की गाँठ खुल जाय। वह आत्म कल्याण हेतु सदैव जिज्ञासु बना रहे। सत्संग से व्यक्ति के चित्त की वृत्तियाँ विषयों से उन्मुख होकर ईश्वरी–रोन्मुख होती है। धीरे–धीरे यही वृत्ति अन्तर्मुखी होकर परम कल्याण की भागी बना देती है। जीव को आत्म कल्याण के लिए सदैव तत्पर होकर संतों का समागम करते रहना चाहिए।

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रियम् ।।

– चाणक्यनीति दर्पण

अर्थात् लक्ष्मी देवी जिसकी माँ है, सर्वव्यापक आनन्द दाता परमेश्वर जिसका पिता है और परमेश्वर के भक्त जिसके बन्धु है ऐसे मनुष्य के लिए तीनों लोक ही अपने देश के समान हैं।

ईश्वर से जुड़ने का उपाय

– पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

जो मुनष्य अपने वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है, उसका सम्बन्ध परमात्म–तत्व से स्पष्ट और प्रकट हो जाता है, जिसकी अभिव्यक्ति उच्च–शक्तियों के रूप में होकर संसार को प्रभावित करने लगती है और लोग उस व्यक्ति को अवतार, पैगम्बर, ऋषि योगी आदि मान कर पूजने और मनन करने लगते हैं। वह दिव्य–पुरुष बन जाता है।

परमात्म–तत्व वह अनन्त–जीवन, वह सर्व–व्यापी चैतन्य और वह सर्वोपरि सत्ता है, जो इस जगत के पीछे अदृश्य रूप से काम करती है, इसका नियमन और नियन्त्रण करती है और जिससे दृश्यमान् जीवन आता है और सदा सर्वदा आता रहेगा। इसी अनन्त, असीम और अनादि ज्ञान और शक्ति के भण्डार से सम्बन्ध स्थापित हो जाने से साधारण मनुष्य असाधारण बनकर अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञाता हो जाता है।

अणु–अणु का मूलाधार वह परमात्म–तत्व ही है। सब कुछ उसी से बनता और उसी चेतना–शक्ति से गतिशील होता है। आकार–प्रकार में भिन्न दीखते हुए भी प्रत्येक पदार्थ एवं प्राणी एक उसी तत्व का अंश है। जिस प्रकार समुद्र से उठाया हुआ एक जल–बिन्दु भिन्न दीखता हुआ भी मूलतः उसी का संक्षिप्त स्वरूप होता है और समुद्र की सारी विशेषताएँ उसमें होती हैं, उसी प्रकार व्यक्तिगत जीवन और समष्टिगत जीवन सीमित और असीमित के मिथ्या के भेद के साथ तत्वतः एक ही है। जो जीवात्मा है वही परमात्मा और जो परमात्मा है वही जीवात्मा। इस सत्य को जान लेना ही आत्म–ज्ञान कहा गया है। जिन–जिन महापुरुषों ने आत्म–प्रकाश की प्राप्ति कर ली है, उन्होंने अपना अनुभव प्रकट करते हुए, इस सत्य की इस प्रकार पुष्टि की है कि हम अपना जीवन परमात्म–तत्व से एक दिव्य प्रवाह के रूप में पाते हैं अथवा हमारे जीवन का उस परमात्म–तत्व से ऐक्य है। हममें और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। हम और हमारा ईश्वर एक सत्य के ही दो नाम और दो रूप हैं। यही ज्ञान अथवा अनुभव आत्मानुभूति आत्म–प्रतीति अथवा आत्म–ज्ञान के अर्थ में मानी गई है।

प्रतीति के साथ शक्ति का अटूट सम्बन्ध है। जिसे अपने प्रति सर्वशक्तिमान् की प्रतीति होती है। वह सर्वशक्तिमान् और जिसको अपने प्रति निर्बलता की प्रतीति होती है वह निर्बल बन जाता है और उसी के अनुसार उसका जीवन व्यक्त अथवा प्रकट होता है। अपने प्रति इस प्रतीति की स्थापना करने का प्रयास ही आत्म–ज्ञान की ओर अग्रसर होना है। जिसका उपाय आत्म–चिन्तन के सिवाय क्या हो सकता है ? जब यह चिन्तन अभ्यास पाते–पाते अविचल, असंदिग्ध, अतर्क और अविकल्प हो जाता है, तभी मनुष्य में आत्म–ज्ञान का दिव्य–प्रकाश अपने–आप विकीर्ण हो जाता है, दिव्य शक्तियाँ स्वयं आकर उसका वरण करने लगती है और वह साधारण–से असाधारण, सामान्य से दिव्य और व्यष्टि से समष्टि रूप होकर संसार के लिए

आश्चर्य, योगी, अवतार अथवा सिद्ध रूप हो जाता है।

आत्म–ज्ञान ही मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य है। जिसने इस लक्ष्य की ओर ध्यान नहीं दिया, भौतिक विभूतियों के लोभ में इसकी उपेक्षा कर दी, उसने मानों मानव–जीवन का सारा मूल्य गँवा दिया। जो अवसर परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने और उससे बहने वाले दिव्य–प्रकाश को ग्रहण करने कीयोग्यता उपार्जित करने के लिए मिला था, उसे अज्ञान के अन्धकार में अटकते–भटकते रहकर खो दिया। पर भूल मनुष्य जैसे विवेकशील प्राणी के लिए अनुचित और अवांछनीय है। इस अविवेक को त्याग कर हर भटके हुए व्यक्ति को शीघ्र–से–शीघ्र ज्ञान मार्ग पर आ ही जाना चाहिए।

जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य और अलभ्य है, एक बार बीत जाने पर दुबारा नहीं मिलता। इसलिए भूल सुधारने में जितनी शीघ्रता हो जाएगी, उतना ही हितकर होगा। मनुष्य की महत्ता इस एक जीवन में ही अपना सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त कर लेने की है। नहीं तो इतना तो कर ही लेना बुद्धिमानी है कि जो जीवन शेष है, अभी अपने अधिकार में है, उसको सत्यपथ पर नियोजित कर जितना जो कुछ बढ़ाया जा सके बढ़ चला जाये। इस अपेक्षित अभियान का तारतम्य आगामी जीवन में बना रहेगा और तब वह उसी निर्धारित सत्य–मार्ग पर प्रारम्भ से ही चल पड़ेगा।

प्राय: लोगों में यह भ्रान्त धारणा काम करती है कि शरीर छूट जाने के बाद उसके साथ जुड़ी हुई हर बात यहीं छूट जाती है। किन्तु सत्य इससे सर्वथा भिन्न है। शरीर छूट जाने पर जीवन का अन्त नहीं होता। जीवन तो एक अनन्त एवं अवछिन्न प्रवाह है, जो सदा–सर्वदा एक तारतम्यता के साथ प्रवाहित होता रहता है। जीवन अमर है, इसका कभी नाश नहीं होता, जीवात्मा इस स्थूल लोक को त्याग कर इसके पश्चात् आने वाले लोक के नये आकार में जीवनक्रम को पूर्ववत् चालू रखता है। जीवात्मा का परमात्मा की ओर अग्रसर होना यही विधान है। वह कूद कर अथवा छलाँग लगा कर पूरे पथ को पार नहीं करता, वरन् क्रम–क्रम से सोपान–अनुसोपान पर पैर रखता हुआ ऊपर चढ़ता है। एक जीवन की सारी बातें दूसरे जीवन में उसके साथ यथावत् सूक्ष्म संस्कारों के रूप में जाती हैं और अपनी गतिविधि निर्धारित करती हैं। इसीलिये यह सोच कर कि अब तो जीवन का बहुत भाग बेकार चला गया है, अब हो भी क्या सकता है ठीक नहीं। शेष जीवन में जो सत्प्रयास प्रारम्भ कर दिया जायेगा वह भी अपने पूरे परिमाण के साथ आगामी जीवन का प्रारम्भ बनेगा।

हमारा वर्तमान जीवन, वर्तमान की ही वस्तु है, ऐसा मानना समीचीन नहीं। हमारा जीवन पहले भी था और आगे भी रहेगा। जीवन का वास्तविक अस्तित्व अदृश्य जगत् में ही रहता है। यही नहीं संसार की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक पदार्थ, जिसे हम देख रहे हैं, अथवा आगे देखेंगे, वह आज ही उत्पन्न नहीं हुई है। उसका अस्तित्व पहले से ही सूक्ष्म अथवा अदृश्य जगत् में वर्तमान था। मनुष्य का प्रत्यक्ष जीवन स्थूल–लोक से प्रारम्भ होता दीखता अवश्य है, किन्तु वह वस्तुत: पहले से ही चला आता होता है। एक स्थूल शरीर जिसके छूट जाने को हम जीवन का अन्त मान लेते हैं, वास्तविक शरीर जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं, का ऊपरी आवरण अथवा कलेवर मात्र है।

यह जो कुछ क्रिया–कलाप करता दीखता है वह उस सूक्ष्म शरीर की ही क्रिया होती है, जो

इसके आधार पर प्रकट हुआ करती है। अपने इसी कलेवर के भीतर वह वास्तविक और शाश्वत सूक्ष्म शरीर वृद्धि करता हुआ पूर्णता को प्राप्त होता रहता है। जिस प्रकार छिलके के भीतर अनाज का दाना धीरे–धीरे विकसित होकर पकता रहता है और जब वह पूरी तरह पक जाता है तो बाहर निकल जाता है, जिससे ऊपर का छिलका बेकार हो जाता है। उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के पूर्ण विकसित हो जाने पर अथवा परमात्म–तत्व को आत्मसात् कर लेने पर स्थूल शरीर बेकार और व्यर्थ होकर गिर जाता है। अन्तर केवल इतना है कि अन्न का दाना अपने एक ही आवरण में पूरी तरह पक जाता है और सूक्ष्म शरीर अथवा जीवात्मा को पूर्ण विकास पाने के लिये अनेक बार स्थूल शरीर का कलेवर धारण करना पड़ता है और जिस दिन वह आत्म–प्रतीति की स्थिति में पहुँच जाता है, उसके बाद उसे फिर शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं रहती, वह अपने अनादि एवं अनन्त जीवन प्रवाह से स्त्रोत की तरह मिल कर तद्रूप हो जाता है।

यदि वास्तविक दृष्टि से विचार किया जाये तो पता चलेगा कि हमारा जीवन स्थूल शरीर नहीं, सूक्ष्म शरीर ही है। हम जो कुछ करते हैं, उसी रूप में करते हैं और जो कुछ आगे करेंगे, उसी रूप में। हमारा यह बाह्याकार कितना ही बदलता रहे किन्तु उसमें रहने वाला जीवात्मा कभी नहीं बदलता। हमारा जीवन अपरिवर्तनशील और अमर है यही रहस्य संसार का सबसे बड़ा सत्य है।

हमारा यह वास्तविक जीवन अथवा सूक्ष्म स्वरूप क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर होगा 'विचार'। विचार अपने में मूर्तिमान होते हुए भी सूक्ष्म सत्ता होने के कारण कभी स्पष्ट दिखलाई नहीं देते। उनकी मूर्तिमत्ता कार्यों के रूप ही प्रकट होकर सामने आते हैं। हमारे आस–पास की दुनिया में दिखलाई देने वाली हर वस्तु का सर्वप्रथम स्त्रोत विचार ही होता है। कोई भी वस्तु अथवा पदार्थ सर्वप्रथम विचार रूप में जन्म लेकर ही स्थूल रूप में प्रकट होता है। हम स्वयं अपना जन्म विचारों में ही धारण करते हैं। उन्हीं में पलते–बढ़ते और व्यक्त होते है। हम जीवन रूप में विचार स्वरूप ही हैं। हम आज जो कुछ दिखलाई दे रहे हैं अथवा आगे दिखलाई देंगे, वह हमारे विचारों के सिवाय और कुछ न होगा। अपने जीवन को सत्य पथ पर नियोजित करने का अर्थ विचारों को उस दिशा में उन्मुख करने के सिवाय और कुछ भी नहीं है।

विचार ही मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है। उसे केवल कोरी कल्पना अथवा हवाई उड़ान मान कर महत्व न देने वाले अपने सत्यस्वरूप की ओर से आँख बन्द कर लेते हैं। शाश्वतशक्ति से सम्बन्धित होने से विचारों को संसार की वास्तविक, प्रबल, सूक्ष्म और महान् शक्ति माना गया है। विचारों के कारण ही मनुष्य उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट बनता है।

समानता वाले दो पदार्थ एक दूसरे को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सृष्टि का यह नियम स्थायी और शाश्वत है। हम अपने जीवन के अनुकूल विचारों और शक्तियों को अदृश्य जगत् से आकर्षित करते और स्वयं भी उनकी ओर खिंचते रहते हैं। हमारे विचार सत्य और सत् होंगे, हम सत्य और सत् तत्वों की ओर आकर्षित होंगे। इसके विपरीत असत्य एवं असद् विचारों के कारण हम अवांछनीय तत्वों को आकर्षित करते और उनकी ओर बढ़ते जाते हैं। आत्म–विकास अथवा आत्म–निर्माण का दूसरा नाम विचार–निर्माण ही है।

हम जितने ही कुशल विचार शिल्पी होंगे, हमारी आत्मा का निर्माण उतना ही सुन्दर और स्थायी होगा। अपनी आत्मा का साक्षात्कार ही हम विचारों के द्वारा ही कर सकते हैं। विचारों के आदर्श में ही आत्मा का रूप प्रतिबिम्बित होता है और विचार-चक्षुओं से ही उसके दर्शन किये जा सकते हैं। विचार जितने उज्जवल और पवित्र होंगे, आत्मा का प्रतिबिम्ब उतना ही स्वच्छ और स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा।

आत्म-चिन्तन जिसे आत्म-ज्ञान का उपाय माना गया है, अपने प्रति विचार करना ही तो है। विचार-शक्ति के द्वारा ही हम अपने प्रति किसी स्थायी प्रतीति का सृजन कर सकते हैं। विचार ही वह माध्यम है जो आत्मा और परमात्मा के बीच सम्बन्ध सूत्र की भूमिका पूरी किया करते हैं। अपने विचारों को विचार द्वारा देखिये और पता लगाइये कि आप किस स्थिति में हैं। आपका जीवन-यान ठीक उस पथ पर अग्रसर हो रहा है। यदि ऐसा है तो निरन्तर चलते जाइये और यदि कोई त्रुटि है तो रुकिये और अपने जीवन यान का दृष्टिकोण बदल कर ठीक दिशा में नियोजित कर लीजिए।

मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य परमात्म-तत्व से स्थायी सम्बन्ध स्थापित करना है। और मनुष्य उस परम प्रवाह की एक अविच्छिन्न तरंग है। यह प्रतीति प्राप्त कर लेना ही आत्म-ज्ञान माना गया है। इसका एकमात्र उपाय आत्म-चिन्तन है, जिसे विचार-क्रिया भी कह सकते हैं। इस प्रकार यदि हम इस विचार का अभ्यास करते हुए लगातार आगे बढ़ते रहे कि- " हम स्थूल नहीं सूक्ष्म जीव हैं तथा अजर और अमर हैं, जिसका सीधा सम्बन्ध उस परमात्म तत्व से ही रहता है। किन्तु अज्ञान का अन्धकार उस सत्य का अनुभव नहीं होने देता। इसलिये अब हम उस अन्धकार से निकल कर प्रकाश में आ गये हैं। " हमारी यह प्रतीति निरन्तर बढ़ती जाती है कि हम बिन्दु रूप में सिन्धु और परमात्मा ही हैं, तो कोई कारण नहीं कि हम शीघ्र ही अपने सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त न कर लें।

ऐसा विचार-आत्मा से ग्रहण करते ही वह सर्वव्यापक परमात्म-तत्व वह अनन्त जीवन हमारी ओर आकर्षित होता हुआ हमारे जीवन में और हमारा जीवन बढ़ता हुआ उसमें मिलने लगेगा और तब हमारे बीच के सारे व्यवधान और अवरोध व्यर्थ हो जाएँगे, फिर चाहे वह देहाभिमान हो अथवा मोहान्धकार ।

जीवन में योग की अपरिहार्यता

– स्वामी आत्म शरणानंद

मानव के समस्त दुःखों के निवारण के उपाय के रूप में योग को प्राचीन काल से ही अपनाया जाता रहा है। मनुष्य के दुःखों का मूल कारण है कि वह अपने चेतना के उदगम स्थान से दूर हट गया है। चेतना के उदगम् से युक्त रहना ही योग कहलाता है। चेतना से जुड़े रहना ही युक्त होना कहा गया है। ' युक्त ' शब्द योग के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। 'युक्त' शब्द से योगी अर्थ भी लिया जाता है। सामान्य व्यवहार में 'युक्त' शब्द उचित के अर्थ में प्रयुक्त होता है। प्राचीन काल में मनुष्य परमात्म तत्व से स्वाभाविक रूप से जुड़ा रहता था क्योंकि सतयुग आदि युगों में सतोगुण की प्रधानता रहती है। भक्त शिरोमणि तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में लिखा है –

कृतयोगी सबयोगी विज्ञानी, करि हरि ध्यान तरहिं भवज्ञानी।

त्रेता विविधजग्य नर करहीं, प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा, नर भव तरहि उपाय न दूजा

कलियुग केवल हरि गुण गाहा गावत नर पावहि भव थाहा।

'कृतयुग' सतयुग को कहते हैं सतयुग सत्वप्रधान युग है। मनुष्य स्वभाव से ही आत्मवादी, धर्मज्ञ एवं आत्मरती होता है। कलियुग में रजोगुण, तमोगुण प्रधान रहते हैं। कलियुग में भी सत्वप्रधान प्राणी रहते हैं। जब कोई मनुष्य ध्यान आदि कर्मों में प्रवृत रहता है तो वह सतयुग में ही रहता है। वह अपने आत्मोत्थान रूपी कर्म में लगा रहता है। जब वह ' आध्यात्म ' में स्थित है तो वह जागृत अवस्था में है। जब व्यक्ति निद्रा में आलस्य में प्रवृत्त रहता है तब वह कलियुग में रहता है. ' **शयानो कलिर्भवति** ' सोता हुआ व्यक्ति कलियुग में है। इस प्रकार से विचारकों ने मनुष्य के अन्दर ही युगों की स्थापना मानी है। जो ध्यान योगी है, स्वाध्यायशील है, शम–दम आदि युक्त पुरुष है वह सतयुगी प्राणी होते हैं। ऐसे व्यक्ति ही योगी कहे जा सकते है। ऐसे व्यक्तियों को श्री मद्भगवदगीता में स्थल–स्थल पर बुद्धि–युक्त कहा है जिसका तात्पर्य है कि वह पुरुष बुद्धि से आत्मा से जुड़ा हुआ है अत: वह बुद्धि–युक्त है। बुद्धियुक्त पुरुष सुकृत–दुष्कृत को त्यागकर योग में ही जुड़ा रहता है। ऐसा व्यक्ति नाना प्रकार के कर्म करता हुआ भी कर्म में बँधता नहीं है।

बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते,

तस्माद्योगाय युज्यस्व योग: कर्मसु कौशलम्

अर्थात् हे अर्जुन ! तुम योग से जुड़ जाओ। योग से जुड़ा हुआ व्यक्ति पाप पुण्य को त्यागकर, पाप–पुण्य के फल से रहित होकर निष्कामता को प्राप्त कर लेता है। इसे ही कर्मों की कुशलता रूपी योग कहा गया है। कुशलतापूर्वक कर्म का तात्पर्य है सावधानी पूर्वक–विवेकयुक्त होकर कर्म करना। प्राचीन काल में गुरु आश्रमों में शिष्य यज्ञादि में प्रयोग हेतु कुशा लाया करते थे। कुशा घास की नोक तीखी व पतली होती है हाथों के छिल जाने का भय रहता है अत: सावधानी पूर्वक लाना होता है। 'कुशा' के लाने में जो कुशल है उसे कुशल व्यक्ति कहा जाने लगा। कालान्तर में यह शब्द प्रवीण, योग्य, राजी खुशी व कुशाग्र बुद्धि के लिये प्रयुक्त होने लगा। युक्त शब्द समुचित का भी पर्याय है। योगी का जीवन सब प्रकार से समुचित एवं व्यवस्थित होना चाहिये। योगी के लिये गीता में भगवान् कहते हैं–

युक्ता हार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा

जो युक्त आहार व विहार करता है चेष्टायें युक्त है, सोना–जागना युक्त है ऐसा व्यक्ति योगों से अपने दु:खों का हरण कर लेता है। योगी भी दो प्रकार के कहे गये हैं। प्रथम युक्त योगी व दूसरे युञ्जान योगी। इसे ही दूसरे शब्दों में योगारुढ तथा आरुरुक्ष–युञ्जान योगी कहा गया है। युक्त योगी वे कहे जाते हैं जिनका आत्मतत्व से सीधा सम्बन्ध रहता है। युञ्जान योगी अभी साधकावस्था के होते हैं।

उपनिषद् कहता है–

' आत्मानं विद्धि ' अर्थात् – आत्म को जानो। योग शास्त्र में कहा गया है कि योग से ही आत्म ज्ञान होता है। योगात् संप्रज्ञायते ज्ञानम् योग से ही ज्ञान उत्पन्न होता है। यह ज्ञान न तो प्रवचन की कला से, बुद्धि कौशल से और न तो बहुत प्रवचन सुनने से या पढ़ने से होता है यह ज्ञान तो साधना जन्य है, ध्यानाभ्यासी को ही यह योग लभ्य होता है। इस आत्मज्ञान के समान जीव को पवित्र करने वाली दूसरी वस्तु नहीं है। यह ज्ञान बहुत काल तक ध्यानाभ्यास से ही उत्पन्न होता है। आत्मा या परमात्मा का दर्शन विशुद्ध अन्त:करण वाले को ही होता है, जैसा कि धर्मशास्त्र में आता है–

ध्यानावस्थित तद्‌गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो।

अर्थात् उस परमात्मा को एकाग्र मन वाले योगी लोग अपने अन्त:करण में देख लेते हैं। आज व्यक्ति आत्मलक्ष्य से दूर हो गया है। इसी का कारण है कि व्यक्ति दु:ख से संतप्त हो रहा है। मानव का लक्ष्य है परम तत्व से जुड़े रहना जिसे योग कहते हैं।

मनुष्य को यदि सुख चाहिये तो उसे ऐसा कोई कार्य व व्यवहार नहीं करना चाहिये जो व्यवहार स्वय को अच्छा न लगता हो "आत्मन: प्रतिकूलानि परेशां न समाचरेत" अपने लिये अभीष्ट आचरण के विरुद्ध आचरण दूसरे के लिये नहीं करना चाहिये। यही धर्म की प्रथम सीढ़ी है। प्राचीनकाल में गुरुजन शिष्य को उपदेश देते थे – सत्यं वद । धर्मम् चर। वत्स' सदा सत्य बोलो। धर्म के मार्ग पर चलो। इस प्रकार का उपदेश बाल्यकाल में विद्यार्थी को दिया जाये तो वह मानव अपना कल्याण करेगा तथा राष्ट्र व मानवजाति का कल्याण करेगा। जिनको ऐसी शिक्षा मिली वे ही महापुरुष बन सके हैं।

श्री सुरेन्द्र बहादुर जी एवं उनके परिवार पर कृपा

– केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

सेवा निवृत उप प्रधानाचार्य, परम आदरणीय श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह जी, जिनकी अवस्था इस समय लगभग इक्कासी वर्ष है, महात्मा गाँधी इण्टर मीडिएट कॉलेज कछवा जनपद मिरजापुर (उ.प्र.) से सेवा मुक्त हुये हैं। आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अकारण करुणा करके अपनी चरण शरण में हमें अहैतुकी कृपा करके जब पहली बार बुलाया था, उस समय आदरणीय श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह जी द्वारा स्वरचित श्री सद्गुरुदेव भगवान एवं दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के श्रद्धामय एवं प्रेम रस की भावनामय भजनों से पूर्वान्चल (उ.प्र.) का श्री सिद्धगुफा योग प्रचार मण्डल पूर्ण–रूपेण ओत–प्रोत था। अपने गुरुभाई – बहनों के घरों में सायंकालीन आरती का समय हो या किसी के यहाँ सामूहिक सतसंग का समय हो, प्रायः हर जगह इन्हीं द्वारा लिखित भजन प्रभु दरबार में गाये जाते थे।

आपका मूल निवास स्थान कछवा बाजार टाउन एरिया क्षेत्र में ही है। आप के परम आदरणीय पिता जी का नाम श्री माता बदल सिंह जी था। इनकी कुल छः सन्तानें हुयी, जिसमें प्रारम्भ वाली सन्तानें तीनों लड़कियां हैं, तथा बाद वाली तीनों लड़के हैं। सभी बहनें शादी–शुदा हैं एवं अपनी ससुराल में सानन्द जीवनयापन कर रही हैं। तीनों लड़कों के नाम क्रमशः श्री गिरीश नारायण सिंह, श्री हरीश नारायण सिंह और श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह हैं। श्री माता बदल सिंह जी अपने भाइयों के साथ कलकत्ता शहर में रहकर व्यापार करते थे। उनका मुख्य व्यापार मसालों का ही था। उसके साथ कुछ और सामानों का व्यवसाय करते थे परन्तु अपने मसालों के व्यवसाय के लिये ये मुख्य रूप से जाने जाते थे। उन्हीं दिनों जापान की लड़ाई छिड़ गयी तथा साथ ही मुसलमानों ने दूसरे प्रान्तों के बड़े व्यापारियों को मारना, पीटना एवं लूटना आरम्भ कर दिया। इन परिस्थितियों में इनके पिताश्री ने वहाँ रहना उचित नहीं समझा एवं अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ अपने घर आ गये।

इनके पिता श्री माता बदल सिंह जी जन्मजा श्री कृष्ण भक्त थे एवं खूब विधि–विधान से योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान का आरती–पूजन एवं पूजा पाठ किया करते थे। कलकत्ता से वापस अपने घर आने पर इन्होंने भगवान श्री कृष्ण के पूजापाठ में पहले से ज्यादा समय लगाना आरम्भ कर दिया। इस आध्यात्मिक आनन्द में गहरी पैठ बनाने के लिये इन्होंने पूरे एक साल का मौन व्रत रखकर अनुष्ठान किया। इस मौन व्रत के अनुष्ठान में, वे किसी से बोलते नहीं थे, एवं क्रम इस प्रकार बनाये थे कि तीन घंटा मंत्र–जप और एक घंटा ध्यान, तदन्तर फिर तीन घंटा मंत्रजप और एक घंटा ध्यान किया करते थे। इसके करने से जब शरीर थकान महसूस

(अनुभव) करता था तो मुक्ति दाता ग्रंथों का अध्ययन किया करते थे। ध्यान करते समय कभी धीरे–धीरे रोना, कभी जोर से रोना तथा कभी धीरे–धीरे हँसना एवं कभी जोर से हँसना इनका स्वभाव बन गया था। संक्षेप में ये कहा जाय कि ये उच्चकोटि के भगवान श्री कृष्ण भक्त थे, तो ज्यादा उचित होगा।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में, हमारे परम आदरणीय गुरुभाई बाबू महेन्द्र नारायण सिंह को निरोग्य बनाकर, जिन्हें डाक्टरों, हकीमों एवं वैद्यों ने लाइलाज घोषित कर दिया था, अनाथनाथ योगेश्वर श्री सद्गुरुदेव भगवान ने श्री सिद्धयोग के प्रचार एवं प्रसार का श्री गणेश किया। उनके विशेष आग्रह एवं अनुनय–विनय को स्वीकार कर श्री गुरुदेव भगवान ने बरैनी गाँव में अपना पहला योग प्रचार कार्यक्रम किया। यह गाँव देवनदी गंगा के किनारे बसा हुआ है। इस गाँव में श्री गुरुदेव भगवान का पहला कार्यक्रम सम्भवतः तीन जनवरी से दस जनवरी उन्नीस सौचौसठ तक की अवधि अर्थात् आठ दिन का था। पहले दिन अर्थात तीन जनवरी चौसठ को प्रातः काल आराध्यदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज बरैनी ग्राम पधारे एवं सायंकाल कछँवा ग्राम में स्थित जलाशय के तट पर स्थित देवालय पर अपना परिचय, अपने प्रथम प्रवचन से दिया। आज के प्रवचन का विषय था, योगी श्रीकृष्ण के प्रति ब्रज–बालाओं का निःस्वार्थ प्रेम तथा महात्मा उधव का आत्मज्ञान। गोपिकाओं के योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण के प्रति प्रेम का रंग, महात्मा उधव के आत्मज्ञान को बदरंग कर देती है। महात्मा उधव से वे सब स्पष्ट कहती हैं कि:–

उधव ! मन नाहि दस–बीस,
एक हुतो सो गये कृष्ण संग,
को आराधे ईश।
उधव मन नाहि दस बीस।

गोपिकाओं को समझाने गये, महात्मा उधव को बैरंग लौटना पड़ा। पूर्ण योगी श्री कबीर दास जी ने इसी तथ्य को और स्पष्ट करते हुये लिखा है कि :–

कबीरा मन तो एक है,
चाहे जहाँ लगाव।
चाहे तो हरि भजन कर,
चाहे विषय कमाव ।।

प्राणीमात्र के मन का एक गुण है और एक दुर्गुण है। गुण यह है कि एक समय में केवल एक ही बात अपने पास रखेगा, उसी का चिन्तन करेगा। उदाहरणार्थ – इस समय आप इस समय श्री गुरुकृपा प्रसंग पढ़ रहे हैं, आपका मन आध्यात्मिक बना हुआ है, वह इसके अलावा संसार की किसी भी अच्छी या बुरी बात को अपने अन्दर आने ही नहीं देगा, अर्थात उसे याद ही

नही करेगा। मन का दुर्गुण यह है कि वह चंचल है अर्थात बहुत जल्दी–जल्दी सांसारिक बातों को याद किया करता है। मान लीजिये, आपको किसी स्थान की यात्रा करनी है। आपका मन यात्रा हेतु सामान इकट्ठा करने की बात सोच रहा है, उसी क्षण यात्रा साधन की बात सोचेगा, उस क्षण के बाद टिकट लेने की बात सोचेगा, उस क्षण के तत्काल बाद यात्रा साधन में जगह मिलने की बात सोचेगा, एवं वहाँ पहुँचने पर अपने मान–सम्मान की बात सोचने लगेगा, जब की वास्तविकता यह है कि अभी आपका शरीर यात्रा आरम्भ किया ही नहीं है।

श्री गुरुदेव भगवान ने अपने तीन जनवरी चौसठ के सायकालीन या यो कहा जाय तो ज्यादा सटीक रहेगा कि, मन की एकाग्रता, गोपियों का भगवान श्री कृष्ण के प्रति अद्वितीय प्रेम के रहस्य को अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा सरल एवं सुबोध भाषा द्वारा उपस्थित जिज्ञासु एवं भगवत् प्रेमियों को पूर्ण रूपेण समझा दिया। इसी श्रोताओं में हमारे परम आदरणीय गुरुभाई श्री सुरेन्द्र बहादुर सिह जी भी, अपने सहकर्मियों एवं मित्र मण्डली के साथ उपस्थित थे। आराध्यदेव का यह प्रवचन उन्हें मन–भावन लगा। देवालय से अपना प्रवचन समाप्त कर, आराध्यदेव आरती करने एवं रात्रि निवास करने आदरणीय बड़े गुरुभाई श्री महेन्द्र नारायण जी के घर बरैनी पधारे। किसी आध्यात्मिक कवि ने बिल्कुल सटीक लिखा है कि :–

ऐसी लागी लगन, मीरा हो गयी मगन।
वह तो गली–गली हरि गुण गाने लगी ।।

आराध्यदेव जी के उपरोक्त प्रवचन ने आदरणीय भाई श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह जी के मानस पटल को झकझोर दिया। इन्होंने पता लगाया कि ये महात्मा जी कहाँ से आये है, कहाँ गये है और रात्रि विश्राम कहाँ करेंगे। पता करने के बाद ये तत्काल सायकिल से आदरणीय गुरुभाई श्री महेन्द्र नारायण जी के घर बरैनी पहुँच गये। वहाँ सांय कालीन आरती एवं आरती के बाद श्री गुरुदेव के प्रवचन का आध्यात्मिक आनन्द लिये एवं उसके बाद घर आकर रात्रि विश्राम किये। अगले दिन नित्य क्रिया से निवृत्त होकर फिर आराध्यदेव की निवासस्थली बरैनी पहुँच गये। बरैनी में आदरणीय गुरुभाई श्री महेन्द्र नारायण जी से निवेदन किये कि महात्मा जी से एक शंका समाधान करना चाहता हूँ, कृपया उनके पास ले चलने की कृपा करे। बाबू महेन्द्र नारायण जी, उन्हें श्री गुरुदेव भगवान के पास ले गये। सादर प्रणाम निवेदित करने के बाद आदरणीय श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह जी ने निवेदन किया, " महाराज जी ! ईश्वर द्वैत है या अद्वैत है। "श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्द से समझाया, " लल्ला! ईश्वर अद्वैत है।" श्री सुरेन्द्र बहादुर जी ने पुनः साश्चर्य निवेदन किया, "ईश्वर अद्वैत है ? "

योग विद्या के सर्वेसर्वा श्री गुरुदेव भगवान ने श्री सुरेन्द्र बहादुर जी को अपनी मधुर मुस्कान के साथ अपने मुखारविन्द से समझाना आरम्भ किया कि, लल्ला ! ईश्वर तो अद्वैत है ही। इसमें शंका की कोई बात नहीं है। यह तो रही हमारी तुम्हारी बात, परन्तु ईश्वर द्वैत है या अद्वैत इसका सत्य एवं यथार्थ ज्ञान तो केवल योगी को ही होता है। प्राणी जब योग साधना

करता है तो वह योगी बनता है एवं उसे मूलतत्त्व या ये समझो, सत्य का यथार्थ ज्ञान होता है। अब तुम मेरे कहने का तात्पर्य समझ गये होगे। श्री सुरेन्द्र बहादुर जी ने अपना सिर हिलाकर उनकी बातों की पुष्टि की। इसके बाद श्री गुरुदेव भगवान ने कहा कि आरती का समय हो गया है, चलो श्री प्रभु जी की आरती करते हैं। श्री गुरुदेव भगवान ने दादागुरुदेव महाप्रभु श्री राम लाल जी महाराज की आरती की, दो अध्याय गीता का पाठ किया एवं तदन्तर पाठ किये गये अध्यायों का भावार्थ समझाया। उसके बाद वाला दिन रविवार था। हमारे परम आदरणीय गुरुभाई कछँवा निवासी श्री दशरथ तिवारी जी, जिन्होंने अपना मान, सम्मान, अभिमान, अपमान और अहंकार श्री चरणों में समर्पित कर दिया है, के विशेष प्रार्थना को स्वीकार कर अनाथ–नाथ ने एक रात्रि निवास एवं एक दिन के योगप्रचार का कार्य उनके घर पर करने की अनुमति प्रदान कर दी। परम आदरणीय गुरुभाई श्री दशरथ तिवारी जी ने आराध्यदेव श्री गुरुदेव भगवान के अपने घर जाने एवं आने की व्यवस्था राजा–महाराजा या यो कहा जाय कि चक्रवर्ती सम्राट की तरह किया था, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। श्री गुरुदेव भगवान का कछँवा बाजार में यह प्रथम योग प्रचार कार्यक्रम रहा, जो बड़ा ही दिव्य एवं प्रेरणादायक रहा। आदरणीय श्री सुरेन्द्र बहादुर जी को, उनकी प्रार्थना पर ; श्री गुरुदेव भगवान ने परम आदरणीय श्री दशरथ तिवारी जी के घर पर योग दीक्षा दी। यहाँ और दीक्षायें हुयी जो एकल और सपत्नीक थी। यहाँ का योग प्रचार कार्य पूर्ण कर आराध्यदेव अपने निवास स्थान बरैनी आ गये। सन् उन्नीस सौ पैंसठ में गुरुदेव का योग प्रचार कार्यक्रम फिर बरैनी में हुआ। योग जिज्ञासु एवं भगवत् प्रेमी, श्रद्धापूर्ण भावना से माला पहना रहे थे एवं आराध्यदेव मधुर मुस्कान के साथ माला पहनते हुये, सबकी पीठ पर थपकी लगाते जा रहे थे। इसी तारतम्य में इनके (श्री सुरेन्द्र बहादुर जी के) पिता जी गेंदा की बड़ी माला (गजरा) पहनाने पहुँचे। श्री गुरुदेव भगवान ने पहनी हुयी सब मालायें उतार कर अपनी चारपायी पर रखा, तब ये गजरा पहनाने को आगे बढ़े। श्री मुख ने कहा कि " रुक जाओ लल्ला "। इतना कहने के बाद आराध्यदेव ने पास खड़े आदरणीय गुरुभाई श्री दसरथ तिवारी जी से प्रश्न किया, " ये कौन हैं लल्ला "। आदरणीय तिवारी जी ने निवेदन किया, " महाराज जी। ये आप के शिष्य श्री सुरेन्द्र मास्टर जी के पिता जी हैं। " आराध्यदेव जी ने अपनी मनोहारी मुस्कान के साथ कहा, " मेरे लल्ला ! सुरेन्द्र बहादुर के पिता जी हैं, फिर कहा,बहुत अच्छी माला है। पहनाओ लल्ला ! तदनन्तर पीठ पर थपकी लगाकर आशीर्वाद – आशीर्वाद कहा। " जब पहनायी हुयी गजरा उन्हें देने हेतु निकालने लगे तो उन्होंने कहा कि महाराज जी, थोड़ी देर और इसे गले में रखने की कृपा की जाय। आराध्यदेव ने आह्लादित मन से उनको देखते हुये कहा, " अच्छा रहा लल्ला !" सम्भवत: उन्हें श्री गुरुदेव नहीं बल्कि उन्हें, उनके आराध्यदेव योगेश्वर श्री कृष्ण के स्थूल शरीर का दर्शन हो रहा था।

आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज का प्रत्येक वर्ष योग प्रचार कार्यक्रम कई वर्षों तक चला। सन् उन्नीस सौ सरसठ के योग प्रचार कार्यक्रम में बरैनी गाँव आने के लिये

श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ट्रेन से कछँवा रोड स्टेशन पर अपने पार्षद गणों के साथ उतरे। स्वागतार्थ रेलवे स्टेशन पर खड़े हमारे आदरणीय गुरु–भाई बहनों की इस बुलन्द आवाज से " श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जै " के स्वर से पूरा रेलवे स्टेशन परिसर गुरुभक्ति से ओत–प्रोत हो गया। ट्रेन से उतरने के बाद आराध्यदेव को कुर्सी पर प्लेटफार्म पर ही विराजमान करवाया गया। तदन्तर श्री गुरुदेव भगवान के पार्षद गण ट्रेन से नीचे उतरे तथा उसके बाद, हमारे गुरुभाइयों द्वारा श्री गुरुदेव भगवान एवं उनके पार्षदगणों का सामान उतार कर प्लेट फार्म की फर्स पर रखा गया। श्री गुरुदेव भगवान के आराम कुर्सी पर विराजमान होते ही, स्वागतार्थ प्लेटफार्म पर उपस्थित भाई–बहनों ने माल्यार्पण करना आरम्भ किया। आदरणीय भाई–बहन कतारबद्ध होकर बारी–बारी से माल्यार्पण कर रहे थे। कतार में सबसे पीछे माल्यार्पण करने के लिये आदरणीय भाई श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह जी खड़े थे।

बाबू श्री सुरेन्द्र बहादुर जी के पिता जी विगत कई दिनों से अस्वस्थ थे। पिछले चार दिनों से तो उन्होंने कुछ भी नहीं लिया था। इनके पिता जी न तो भोजन करते थे, न फलाहार करते थे और यहाँ तक जल भी नहीं पिये थे। इसके कुछ दिन पूर्व से ही वे अपना नैतिक कार्य करने में असमर्थ थे। शरीर में कोई हरकत न होने के कारण परिवार के सभी सदस्य परेशान एवं उदास थे। आदरणीय श्री माता बदल जी की ऐसी स्थिति से इनकी (श्री सुरेन्द्र बहादुर जी की माँ) पत्नी सबसे दु:खी एवं खिन्न थी, जो स्वाभाविक ही है। उनकी धर्म पत्नी ने तो अपने पारिवारिक सदस्यों से यह कहना आरम्भ कर दिया था कि या तो अब ये स्वस्थ हो जाय या इनका शरीर छूट जाय, यही अच्छा है क्योंकि अब इन्हें महान कष्ट है, और ये उसे व्यक्त नहीं कर पा रहे हैं। माल्यार्पण करने वालों की लाइन में सबसे पीछे खड़े आदरणीय श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह जी ने जब श्री गुरुदेव को माला पहनायी श्री गुरुदेव भगवान ने इनकी पीठ पर थपकी लगाकर आशीर्वाद दिया एवं श्री गुरुदेव भगवान एक–डेढ़ मिनट तक ऊपर आकाश की तरफ देखते रहे। इसके बाद वहाँ खड़े अपने भाई से श्री सुरेन्द्र जी ने कहा कि तुम क्यों चले आये, तुम को तो मैंने पिता जी के पास रहने को कहा था? इनके भाई ने कहा कि मन में यह भाव आया कि मैं भी स्टेशन पर ही श्री गुरुदेव भगवान को चलकर स्वागत करूँ एवं माला पहनाऊँ अत: आ गया, अब मैं पिता जी के पास घर जा रहा हूँ। कारण यह था कि आदरणीय श्री माता बदल जी की स्थिति जिस दिन से ज्यादे खराब हुयी, उसी दिन से कोई न कोई, उनके घर का पुरुष सदैव उनके पास मौजूद रहता था कि पता नहीं इनकी स्थिति कब बेकाबू हो जाय एवं इनका प्राणान्त हो जाय।

स्टेशन कछँवा रोड रेलवे से, श्री सद्गुरुदेव भगवान को, उनके पार्षद गणों के साथ, कार्यक्रम स्थल बरैनी ग्राम बड़े ही मान, सम्मान एवं उत्साह के साथ लाया गया एवं वहाँ व्यवस्थित होते ही आराध्यदेव जी ने, आयोजकों द्वारा बनायी गयी नियमावली के अनुसार अपना यौगिक प्रचार कार्यक्रम आरम्भ कर दिया। हमारे वरिष्ठ आदरणीय गुरुभाई श्री महेन्द्र

नारायण जी बरैनी जनपद मिरजापुर में यह कार्यक्रम करवा रहे थे। कार्यक्रम के दूसरे ही दिन आदरणीय भाई श्री सुरेन्द्र बहादुर जी ने गुरुदेव भगवान से प्रार्थना किया, " प्रभो ! मेरे पिता जी की लगभग एक माह से ज्यादे हालत खराब चल रही है और पिछले चार दिनों से तो वे मरणासन्न अवस्था में ही हैं। केवल श्वाँस चल रही है। शरीर मे कोई और हरकत नहीं हो रही है। उन्होंने चार दिनों से कुछ भी ग्रहण नहीं किया है। स्थिति यहाँ तक बिगड़ गयी है कि फलों का रस या पानी उनके मुख में डालने पर कुछ भाग पेट में जाता है एवं लगभग तीन चौथाई भाग बाहर ही गिर जाता है। मेरी माता जी उनकी इस स्थिति से काफी दु:खी हैं, वे कहती हैं कि या तो ये ठीक हो जाय या गुरुजी कृपा करके इन्हें सद्गति देने की कृपा करें, हमारी यही प्रार्थना है।"

उनकी प्रार्थना को सावधान मन से सुनने के बाद आराध्यदेव ने कहा, " लल्ला ! तुम्हारी क्या इच्छा है।" कुछ क्षण शान्त रहकर आदरणीय गुरुभाई श्री सुरेन्द्र बहादुर जी ने प्रार्थना किया, " मेरी भी वही इच्छा है, जो हमारी माता जी की इच्छा है।" उनकी प्रार्थना सुनकर, आराध्यदेव जी ने परम आदरणीय गुरुभाई श्री दशरथ तिवारी जी से, जो गुरुदेव के पास ही खड़े थे ; कहा कि लल्ला ! गुलाब का फूल दो। श्री तिवारी जी ने तत्काल एक गुलाब का फूल आराध्यदेव के कर–कमलो मे दे दिया। श्री प्रभु जी ने गुलाब के फूल की कुछ पंखुड़ियाँ शक्ति पातित करके श्री सुरेन्द्र बहादुर जी के हाथों में देते हुये कहा, " ये पंखुड़ियों खिलाते ही तुम्हारे पिता का शरीर छूट जायेगा, अपनी सुविधानुसार इसे अपने पिता जी को खिला देना।" यह लिखते समय श्री गुरुगीता का यह श्लोक हमें अनायास ही याद आ गया :–

" ज्ञान शक्ति समारुढं, तत्त्व माला विभूषितम् ।
भुक्ति–मुक्ति प्रदातारं, तस्मै श्री गुरुवे नम: ।। "

अर्थात् ज्ञान शक्ति पर आरुढ़, तत्व माला से सुशोभित, समान रूप से भोग और मोक्ष को देने वाले श्री सद्गुरुदेव भगवान को प्रणाम है।

अमोघ प्रसाद देने के बाद, आराध्यदेव ने अपने मुखारबिन्द से कहा, " लल्ला सुरेन्द्र बहादुर ! तुम्हारे पिता को कोई कष्ट नहीं है, वह तो परम आनन्द मे है, परन्तु अब प्रसाद ले ही लिया है तो उसे बहुत दिन तक अपने पास मत रखना, खिलादेना।" श्री सुरेन्द्र बहादुर जी ने अपना सिर हिलाकर उनकी बातों के पालनार्थ स्वीकृति व्यक्त की। योगेश्वर श्री गुरुदेव भगवान का कार्य (योग प्रचार कार्यक्रम) समाप्त होने एवं उनकी विदाई के बाद आदरणीय भाई जी ने अपने अन्य पारिवारिक जनों को, जो मिरजापुर जनपद से बाहर थे, अपने नजदीकी रिस्तेदारों एवं अपने शुभेक्षुकों को अपने घर बुलाया। सबके उपस्थित हो जाने पर, सबको नित्यकर्म से निवृत्त हो जाने के बाद श्री योगेश्वर द्वय की सामूहिक आरती की एवं सबको भोजन, आराम करने के बाद; सबको अपने पिता जी के पास बुलाया। श्री गुरु स्मरण करते हुये, आराध्यदेव जी द्वारा दी गयी, गुलाब की पंखुड़ियाँ उनके ओठों पर रख दी, क्योंकि कई दिनों से उनका मुख नहीं खुला था। तदन्तर संकीर्त्तन, " गुरुदेव जै–जै, सदगुरु जय–जय;

अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जै–जै" आरम्भ कर दिया।

आश्चर्य! महान आश्चर्य! गुलाब की पंखुड़ियाँ ओठों पर रखते ही, पाँच दिन से मुर्दे की तरह पड़ा श्री माता बदल जी का शरीर हरकत में आ गया। स्वतः तीन–चार मिनट तक बड़ी तीव्र गति से भस्त्रिका प्राणायाम हुआ, तदन्तर वह बन्द होते ही उनकी नाभी के नीचे से एक डेढ़ इन्च व्यास का गोला, जो उपस्थित लोगों को उनके शरीर के अन्दर स्पष्ट दिखलायी देता था, शिर की तरफ धीरे–धीरे चढ़ना आरम्भ हुआ। वह गोला पेट एवं छाती से होता हुआ, ज्योंही कण्ठ पर पहुँचा, उनका मुख खुल गया एवं वे गुलाब की पंखुड़ियाँ स्वतः अन्दर चली गयी, उसी समय उनकी आँखें भी खुल गयी। इस विलक्षण प्रकार से उनका प्राणान्त हुआ।

यद्यपि परम आदरणीय गुरुभाई श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह जी का अब तक का सम्पूर्ण जीवन श्री गुरुदेव भगवान की अहैतुकी कृपाओं से लबालब भरा हुआ है, मगर सिर्फ दो कृपाओं का वर्णन यहाँ इस आशय को मनोगत करके लिखा जा रहा है कि उससे नवागन्तुक योगाभ्यासी साधकों एवं आध्यात्मिक जिज्ञासुओं में आराध्यदेव योगेश्वर द्वय (योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) जो हमारे गुरुदेव हैं तथा अखिलेश्वर परम योग योगेश्वर जो हमारे दादा गुरुदेव हैं। के योगमय चरण कमल में श्रद्धा का बीजारोपण हो जाय।

सन् उन्नीस सौ अरसठ में आदरणीय भाई जी, दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अवतारोत्सव, जिसे श्री सद्गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, योग महामेला कहकर सम्बोधित किया करते हैं, का आध्यात्मिक लाभ उठाने योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाँई जनपद आगरा गये हुये थे। योग महामेला समाप्त हुये चार दिन हो रहे थे। गर्मियों के दिन थे, चौथे ही दिन प्रातः कार्यक्रम (आरती, गीता पाठ एवं उसकी सरल एवं सुबोध व्याख्या) के बाद, श्री गुरुदेव भगवान ने वहाँ उपस्थित सभी भाई–बहनों से कहा कि सब अपने–अपने रुकने वाले स्थान पर जाकर ध्यान में बैठ जाओ। अतः श्री भाई जी गये एवं तुरन्त ध्यान में बैठ गये। दो घन्टे से कुछ ज्यादे समय तक ध्यान में बैठे रहे एवं उसके बाद इन्होंने अपने बैठने का आसन उठाया तो इन्हें, यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि इनके आसन के नीचे एक बड़े आकार का विषैला बिच्छू दब कर चिपटा हो गया है, परन्तु वह मरा नहीं था। इनके आसन हटाने के लगभग दस मिनट बाद वह अपने सामान्य आकार एवं चेतना में आ गया एवं फिर पास रखे लकड़ी के ढेर में चला गया। यह अब बिल्कुल सामान्य स्थिति में था।

आदरणीय श्री सुरेन्द्र बहादुर जी के बड़े भाई जी का नाम श्री गिरीश नारायण सिंह जी था। उनकी तबियत खराब चल रही थी। यह बताना भी समीचीन होगा कि गुरुभाई जी की पढ़ाई, इनके इसी भाई श्री गिरीश जी द्वारा कलकत्ता के विद्यालयों में ही करायी गयी थी। यह कृपा प्रसंग दीक्षा प्राप्त करने के मात्र साल–दो–साल के अन्दर का है। श्री गिरीश नारायण जी की तबीयत ज्यादे खराब हो गयी एवं डाक्टरों ने उन्हें लाईलाज करार दिया। जब श्री सुरेन्द्र जी को यह सूचना मिली तो ये बहुत दुःखी हुये। इन्होंने कलकत्ता में उनकी सेवा में लगे प्राणी से

तुरन्त गुफा की रजप्रसाद उन्हें खिलाने को कहे एवं समाचार मिलने के समय से ही उनका चिन्तन कर रहे थे। प्रातः कालीन आरती करते समय इनके मन में बार–बार यह विचार आ रहा था कि गुरुदेव भगवान ! मेरे भाई को किसी प्रकार बचा लीजिये। उसी समय इन्हें अनुभव हुआ कि आज का दिन इनके आदरणीय भाई का अन्तिम दिन है। आरती के बीच में ही ये खड़े–खड़े ध्यानस्थ हो गये। ये अपने घर पर (मिरजापुर जनपद में) आरती कर रहे थे एवं इनके भाई साहब अपने निवास स्थान कलकत्ता में थे। ध्यान में इन्होंने स्पष्ट देखा कि इनके भाई की मृत्यु हुई एवं उनके प्राणों को लेकर दो विशालकाय प्राणी चले। वे उसे लेकर एक लोक में पहुँचे। उस लोक में इन्हें दो दरवाजे दिखलायी दिया। एक बहुत बड़ा जिसका रुख पश्चिम तरफ को था एवं जिसके द्वार पाल भयानक आकृति वाले विकराल शरीर के थे, उस गेट के अन्दर इनके भाई के प्राण ले जाने लगे। उसी समय एक बिजली की गरजने जैसी तेज आवाज सुनायी दी, " रुक जाओ ! एक कदम भी आगे मत बढ़ना। यह हमारा बच्चा है, पूरब वाले गेट से जायेगा।"

आदरणीय भाई जी ने स्पष्ट देखा कि यह गगनभेदी आवाज में आदेश देने वाले कोई और नहीं बल्कि हमारे, आपके और प्राणीमात्र के साथ–साथ, चर–अचर के भाग्य विधाता योगेश्वर श्रीचन्द्र मोहन जी महाराज ही हैं। आराध्यदेव जी ने जिस गेट से श्री सुरेन्द जी के बड़े भाई के सूक्ष्म शरीर (प्राण) को ले जाने की आज्ञा दी, वह गेट पश्चिम वाले गेट से अपेक्षाकृत छोटा था। इस गेट पर ड्यूटीरत द्वारपाल स्वस्थ्य एवं सौम्य आकृति के थे। उनकी मुखाकृति सुहावनी एव आकर्षक थी। उन्होंने श्री गुरुदेव भगवान को आगे की तरफ आधा झुककर प्रणाम किया। दूत जब इस गेट में भीतर "प्राण" के साथ प्रवेश किये तो श्री गिरीश नारायण जी के प्राण को भी द्वारपालों ने झुक कर प्रणाम किया। उस गेट से मनभावनी सुगन्ध आ रही थी। जैसे–जैसे इनके भ्राता जी का प्राण, उस गेट से होकर दिव्य लोक में बढ़ता गया, वह मनभावनी सुगन्ध की प्रगाढ़ता बढ़ती गयी एवं उनके आगे, उस लोक में पूरी तरफ प्रवेश हो जाने पर इन्हें दिखना बन्द हो गया। इधर भाई जी को ध्यान में दिखना बन्द हो गया। भाई जी लगभग एक घंटे तक ध्यान में थे। आदरणीय गुरुभाई श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह जी पर हुये गुरुकृपा का यह चरित्र निम्न पक्तियों के साथ विश्रामित है:–

" सारे जग को वही नचाते, तुमको वही नचायेंगे।
वैसे ही नाचोगे लल्ला, जैसे प्रभु नचायेंगे।। "

यों विचित्र तरीके से काटा क्लिष्ट कर्म

– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी

भ्रम भंजन कर लोक का, जो गुरु हरते क्लेश,
उनके भक्तों के सम्मुख, उनके ही उपदेश।

पूर्व जन्म में कोई अच्छे कर्म रहे होंगे जो घर (फीरोजाबाद) के समीप ही बिना खोजे गुरुधाम मिल गया और पूर्ण सिद्ध सद्गुरुदेव योग योगेश्वर चन्द्रमोहन जी महाराज। **जुलाई** 1956 से ज्यों ज्यों संपर्क बढ़ता गया हर दिन शुभता की ओर कदम बढ़ाता रहा। स्नातकोत्तर महाविद्यालय – हल्द्वानी में नौकरी मिली परन्तु ग्रहों की प्रतिकूलता के कारण उस कॉलेज के प्रबंधक का चहेता एक युवक उसी पद प्राप्ति हेतु जी का जंजाल बन कर खड़ा हो गया। प्रबन्ध समिति में मुरदार लोग तो होते नहीं बल्कि दमदार राजनीतिज्ञ या धनवान होते हैं सो नौकरी छोड़ने के लिए मेरा उत्पीड़न शुरू हो गया। दो बार सेवा समाप्ति का आदेश हुआ परन्तु गुरु द्वय की कृपा से कुलपति – आगरा वि.वि. द्वारा निरस्त हो गया। अत: अपनी पराजय से खीझ कर प्रबन्ध समिति ने वकीलों की सहायता से घेराबन्दी करके सेवा समाप्ति का प्रस्ताव पारित कर कुलपति कुमायूँ वि.वि. नैनीताल के पास अनुमोदन हेतु भेज दिया क्यों कि कुलपति की धारणा थी कि कॉलेज बनाने और चलाने वाले यदि एक दो व्यक्तियों को हटा दें तो क्या कठिनाई है? अत: प्रबंध समिति का रास्ता सुगम हो गया था।

कुलपति के यहाँ सुनवाई लगभग 1 वर्ष चली। मैंने अपना पक्ष प्रमाणों के साथ प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया। अपने **ज्येष्ठ भ्राता श्री के. के. चतुर्वेदी**, ऐडवोकेट की सलाह पर प्रबंध समिति द्वारा हिन्दी में पूछे गये स्पष्टीकरणों का उत्तर अँग्रेजी में, और अंग्रेजी में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर हिन्दी में देना शुरू कर दिया था। सुनवाई पूर्ण होने पर कुलपति ने 1 माह बाद निर्णय देने की सूचना दे दी। चलते समय कुलसचिव ने मुझे अकेले में बुलाकर बताया कि मेरा पक्ष कागजी दृष्टि से बहुत मजबूत है परन्तु स्वयं कुलपति, प्रबंधक कॉलेज, प्रबंधक ट्रस्ट, हैडक्लर्क, मंत्री शिक्षक संघ, प्राचार्य और अध्यक्ष शिक्षणेतर कर्मचारी सभी बनिये (वैश्य) हैं अत: विपरीत निर्णय की पूरी संभावना है।

ग्रीष्मावकाश भी शुरू होगया था अत: मैं अपने घर फीरोजाबाद आ गया और वहाँ से 20 कि.मी. दूर आश्रम रोजाना प्रात: आकर शाम को लौट जाता था। निर्णय की तारीख की समीपता के साथ व्यग्रता बढ़ रही थी। एक दिन सायं जब गुरुदेव–गुरुभवन के सामने विराजमान थे तो मैंने वही निवेदन पुन: दोहराया। श्री गुरुदेव बोले कि – "लल्ला अभी 4 माह क्लेश बाकी है और सहलो हमेशा के लिए इस झंझट से मुक्त हो जाओगे"। चूँकि मैं कक्षा 9 से

आरहा था अत: सामीप्य अधिकता से मैंने निवेदन किया कि मैं कुछ कहना चाहता हूँ। उस दरबार में मनाही कब थी अत: आदेश हुआ।

मैंने अपनी बात **कल्पित** उदाहरण से यों शुरू की। मानलें कि मैं सीढ़ियों से उतर रहा हूँ। बुरे ग्रह के प्रभाव से गिर जाता हूँ, पैर की हड्डी टूट जाती है। तत्काल अच्छा ग्रह शुरू हो जाता है अत: सब सुविधायें और उपचार मिल जाता है। परन्तु कुछ दिन प्लास्टर तो बंधेगा ही, फिर ऐक्सरसाइज आदि यानी 5–6 माह का कष्ट। अत: गुरुदेव – **यही एक बुरा क्षण बचाना है।** कुलपति के विपरीत निर्णय से तत्काल तो समस्यायें बढ़ेंगी ही। इसे सुनकर करुणा सागर दोनों हाथ बाँध कर सिर के पीछे रखकर बैठ गये। मुझमें अधीरता का दुर्गुण भी है सो मैं उठा, चरणों में सिर रखा ही था कि **गुरुदेव ने एक हाथ मेरी गर्दन पर रखा और दूसरे हाथ से पीठ में 5–6 थप्पड़ कस–कस कर मारे कि पीठ झन्ना गई** और बोले कल या परसों हल्द्वानी चला जा। ये क्षण शुभ होगा तू गिरने से बच जायेगा परन्तु 4 माह जौइन नहीं कर सकेगा।

मैं उठा, अगले दिन हल्द्वानी रवाना हुआ। उसके अगले दिन पहुँचा तो देखा कि अखबार कुलपति के खिलाफ चल रहे आन्दोलन के समाचारों से भरे पड़े थे। बाद में ज्ञात हुआ कि उन्हीं दिनों कुलपति ने कुलसचिव से मेरी फाइल की वैधानिक स्थिति पूछी और तदानुकूल न्यायिक निर्णय लिख लाने को कहा। अगले दिन प्रबन्ध समिति के उत्पीड़क कार्यकलापों पर कठोर टिप्पणियाँ देते हुए मेरे पक्ष में निर्णय आ गया।

अब बचे 4 माह सो प्रबंध समिति ने उस आदेश के विरुद्ध कुलाधिपति / राज्यपाल, उ. प्र. के यहाँ अपील कर दी। चूँकि कुलपति का निर्णय तर्कपूर्ण, कठोर और न्यायिक था अत: 4 माह बाद मेरे पक्ष में पुन: निर्णय हुआ। इतना ही नहीं 3 माह बाद सरकार ने कॉलेज टेक ओवर कर लिया। राजकीय सेवा स्वीकार कर मैं प्रथम श्रेणी राजपत्रित अधिकारी बन गया। हमेशा के लिए संकट मुक्त हुआ।

आज सोचता हूँ कि पूज्य गुरुदेव द्वारा कष्ट मुक्ति का **कैसा अभिनव प्रयोग** किया गया जो मैंने उन्हें कभी करते नहीं देखा था। कितनी बड़ी आपदा रही होगी जिसे इस प्रकार टाला गया। अंत में भक्त कवि **भानुदत्त त्रिपाठी मधुरेश** उन्नाव की पंक्तियों से यह संस्मरण समाप्त करता हूँ :–

"छोड़ असत् को, सत से ही तू जोड़ कर्म के तार।
ऊर्ध्वमुखी पंकज सम उठकर अपना कर उद्धार ।।
जो करना है, करता चल तू, क्यों करता कल–कल।
क्षणभंगुर है तन, जीवन में मन ! दीपक सम जल ।।

योग वासिष्ठ से साभार

श्री वसिष्ठ जी के द्वारा श्री रामचन्द्रजी के प्रति जीवन मुक्त पुरुष की विशेषता

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा– आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवन् ! ऐसा होने पर श्रेष्ठबुद्धि आत्मज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुष में अन्य सिद्धोंकी अपेक्षा कौन – सी विशेषता होती है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा– श्रीराम! जीवन्मुक्त ब्रह्मज्ञानी पुरुषकी बुद्धि सच्चिदानन्द परमात्मामें ही दृढ़रूप से जम जाती है। यही कारण है कि वह नित्यतृप्त शान्तचित्त पुरुष परमात्म–स्वरूप में ही स्थित रहता है। मन्त्र, तप एवं तन्त्र की सिद्धि से युक्त सिद्धों के द्वारा प्राप्त की गयी जो आकाशगमन आदि सिद्धियाँ हैं, उनमें कौन – सी अपूर्व (महत्त्वकी) विशेषता की बात है ? मन्त्रसिद्धि आदि से युक्त उन सिद्धों ने प्रयत्नपूर्वक साधन कर जिन अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति की है, उनमें ब्रह्मज्ञानी पुरुष कोई विशेषता नहीं समझता। उस जीवन्मुक्त महात्मा में यही विशेषता है कि वह मूढ़ बुद्धि अज्ञानी पुरुषों के समान नहीं रहता। उस महाबुद्धि का मन सभी वस्तुओं में आसक्ति के परित्याग के कारण रागरहित तथा निर्मल ही बना रहता है और वह कभी भी विषयभोगों में नहीं फँसता है। जिसका स्वरूप समस्त बाहरी चिन्हों से रहित है तथा तत्त्वज्ञान से दीर्घकालिक सांसारिक भ्रम की निवृत्ति हो जाने के कारण जो परम शान्ति को प्राप्त हो चुका है, उस ज्ञानी महापुरुष में काम, क्रोध, विषाद, मोह, लोभ आदि आपत्तियों का नित्य अत्यन्त अभाव ही रहता है।

प्रिय श्रीराम ! महासर्ग के आरम्भ में प्राणी उस परमात्मा से निकलकर अपने–अपने कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार के जन्मों का अनुभव करते हैं।परमात्मा से निकलने के बाद उन जीवों के अपने–अपने जो कर्म हैं, वे ही सुख और दुःख के कारण होते हैं तथा अपनी–अपनी समझ के अनुसार उत्पन्न हुआ जो संकल्प है, वही शुभाशुभ कर्मों का कारण होता है। निष्पाप श्रीराम ! ये इन्द्रियाँ जिस–जिस विषय की ओर निरन्तर दौड़ती हैं, उस–उस विषय में पुरुष राग के द्वारा बंध जाता है। इसलिये उन विषयों में राग न करने वाला पुरुष ही मुक्त होता है। अतएव तृण से लेकर देवादि शरीर तक के जितने स्थावरजङ्गमरूप विनाशशील पदार्थ हैं, उनमें तुमको रुचि नहीं करनी चाहिये। तुम जो कुछ करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ हवन करते हो और जो कुछ दान करते हो, उन सब क्रियाओं में तुम वास्तव में न कर्ता हो और न भोक्ता हो; क्योंकि तुम उन सबसे मुक्त और शान्तस्वरूप हो ।जो महात्मा पुरुष हैं, वे न तो अतीत के विषय में शोक करते हैं और न भविष्य के विषय में चिन्ता ही करते हैं ।वे तो वर्तमानकाल में जो कुछ न्याययुक्त कर्म प्राप्त हो जाता है, उसी का उचित रूप में सम्पादन करते हैं। श्रीराम ! तृष्णा, मोह, मद, आदि जितने त्याज्य भाव हैं ये सब मन में ही स्थित रहते हैं, इसलिये बुद्धिमान् पुरुष को अपने विवेक–विचार युक्त मन के द्वारा ही मनसहित उनका विनाश कर देना चाहिये; क्योंकि जैसे

अति तीक्ष्ण लोहेसे लोहा काटा जाता है, वैसे ही सब भ्रमों की शान्ति के लिये अति तीक्ष्ण विवेक–विचारयुक्त मन से दोषसहित मन काटा जाता है।

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा – मुनिनायक ! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति–इन तीनों अवस्थाओं में व्यापक और अलक्षित जो तुर्यरूप है, उसका विशेष रूप से विवेचन करते हुए बतलाइये।

श्री वसिष्ठ जी बोले – श्री राम ! जो असक्त, सम और स्वच्छ स्वरूप स्थित है वही तुर्य है। जिसमें जीवन्मुक्त पुरुषों की स्थिति है, जो स्वच्छ, समरूप और शान्त है तथा जो व्यवहारकाल में साक्षीरूप है, वही तुर्यावस्था कही जाती है। संकल्पों का अभाव रहने के कारण यह अवस्था न जाग्रत् है, न स्वप्न है और अज्ञान का अभाव होने से यह सुषुप्त ही है अर्थात् यह इन तीनों अवस्थाओं से अतीत है। ज्ञान के द्वारा सामने दिखायी देने वाले इस जगत् की जो निवृत्ति है, परमात्मा में स्थित एवं भलीभाँति प्रबुद्ध हुए ज्ञानी पुरुषों की उसी अवस्था को तुर्यपद कहते हैं। अहंकार का त्याग होने पर और चित्त के विलीन हो जाने पर जब समता की उत्पत्ति हो जाती है, तब उसे तुर्यावस्था कहते हैं।

श्रीराम ! इसके अनन्तर अब तुम्हें मैं एक दृष्टान्त बतला रहा हूँ, उसे सुनो। किसी एक विस्तृत घने जंगल में महामौन धारण करके बैठे हुए किसी एक अद्भुत मुनिको देखकर एक व्याध ने उनसे पूछा – ' मुने मेरे बाण के द्वारा घायल एक मृग इधर आया था, वह कहाँ चला गया? इस प्रकार का उस व्याध का प्रश्न सुनकर उस मुनि ने उस व्याध को उत्तर दिया – 'सखे! हम जंगल के निवासी मुनि समता और शीलवान् होते हैं। व्यवहार का कारण जो अहंकार है, वह हम लोगों में नहीं है। सम्पूर्ण इन्द्रियों का कार्य अकेला अहंकार रूप मन ही करता है और वह मेरा मन निःसंदेह चिरकाल से विलीन हो चुका है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति नामक किसी भी अवस्था को मैं नहीं जानता। इन अवस्थाओं से अतीत एक मात्र तुर्यपद में ही, जहाँ दृश्य का अभाव है, मैं स्थित रहता हूँ।' रघुनन्दन ! उस मुनिश्रेष्ठ के ऐसे वचन सुनकर वह व्याध उनके अर्थ को न समझकर अपनी अभीष्ट दिशा की ओर चला गया। इसीलिये मैं कहता हूँ कि महाबाहो ! तुर्य से श्रेष्ठ अन्य कोई अवस्था नहीं है। कल्पना से रहित सच्चिदानन्द परमात्मा ही तुर्य है और वही यहाँ विद्यमान है, उसके सिवा अन्य कुछ नहीं है; क्योंकि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति – ये तीनों अवस्थाएँ चित्त का ही विकार होने से उसका स्वरूप है। जाग्रत्– अवस्था का चित्त घोर है, स्वप्न–अवस्था का चित्त शान्त है और सुषुप्त–अवस्था का चित्त मूढ़ है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति – इन तीनों अवस्थाओं से रहित हुआ चित्त 'मृत' है। जो 'मृत' चित्त है, उसमें एकमात्र सत्त्व ही समरूप से स्थित रहता है। इसी का समस्त योगीजन बड़े यत्न के साथ सम्पादन करते हैं और मुक्त हो जाते हैं।

समस्त दृश्य –जगत् का बाध करना ही सम्पूर्ण अध्यात्मशास्त्रों का परम सिद्धान्त है। वहाँ न तो अविद्या है और न माया ही है; किंतु एक अद्वितीय, क्रिया रहित शान्त विज्ञानानन्दघन

परब्रह्म ही है। जो शान्त, चेतन, स्वच्छ, सर्वत्र एकरूप से विद्यमान तथा सर्वशक्ति सम्पन्न 'ब्रह्म' नाम से कहा गया है, उसे अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय करके कोई शून्य, कोई विज्ञान मात्र और कोई ईश्वररूप कहते हुए आपस में विवाद किया करते हैं। मनुष्य को रमणीय या अरमणीय वस्तु को देखकर उनमें समभाव से स्थित रहना चाहिये। बस, इतने ही अपने साधन से यह संसार जीत लिया जाता है। सुख या दुःख अथवा सुख–दुःख–मिश्रित पदार्थ के प्राप्त होने पर उनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। बस, इतने ही अपने साधन से वास्तविक अक्षय अनन्त सुखरूप परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। जिसने तीनों लोकों की सभी वस्तुओं के साररूप परमात्मा का ज्ञान कर लिया है, जो शोभायमान तथा अमृतमय है और जिसका अन्तःकरण पूर्ण चन्द्रमण्डल के सदृश शान्त है, ऐसा परम पद में स्थित ज्ञानी महात्मा पुरुष विज्ञानान्दघन परमात्मा को प्राप्त करता है। वह कर्मों को करता हुआ भी कुछ नहीं करता।

सिद्धयोगिराज

विश्वातीतं यथा विश्वमेकमेव विराजते।
संयोगेन सदा यस्तु सिद्धयोगी भवेत्तु सः।।
सर्वासां निजवृत्तीनां प्रसृतिर्भजते लयम्।
स भवेत्सिद्धसिद्धान्ते सिद्धयोगी महाबलः।।
उदासीनः सदा शान्त स्वस्थोऽन्तर्निजभासकः।
महानन्दमयो धीरः स भवेत् सिद्धयोगिराज।।
परिपूर्णः प्रसन्नात्मा सर्वासर्वपदोदितः।
विशुद्धो निर्भरानन्दः स भवेत् सिद्धयोगिराज।।

विश्वतीत (संसार में व्यापक परब्रह्म) परमेश्वर से जो निर्विकल्प समाधि में अभिन्न–तद्रूप हो जाता है, वह सिद्धयोगी है। जो अपने मन की समस्त वृत्तियों को आत्मा में लय कर लेता है वह सिद्धों के सिद्धान्त में परम शक्तिशाली महायोगी के रूप में सम्मानित होता है। जो विषयप्रपंच से रहित हो जाता है, इस तरह उदासीन होकर सदा शान्त रहता है, अपने स्वस्वरूप में स्थित रहकर उसका (चैतन्यरूप में) प्रकाशक होता है, सच्चिदानन्द में स्थित होकर कूटस्थ–असंग रहता है, वह सिद्ध योगिराज कहा जाता है। जो अखण्ड चेतन स्वरूप, द्वन्द्वातीत होकर रहता है, जो स्वाश्रित – समस्त प्रापंचिक उपाधियों से परे होकर अखण्ड स्वरूप में अधिष्ठित रहता है, निर्विकार और आनन्दस्वरूप होता है, वह सिद्धयोगिराज है।

स्वस्थ कैसे रहें ?

स्वास्थ्य मनुष्य का परम धन है। लौकिक उन्नति व पारलौकिक कार्य शरीर से ही सम्पन्न होते हैं। स्वस्थ रहने के लिये मनुष्य को कुछ आवश्यक नियमों को जानना आवश्यक होता है। आयु हमारी सीमित होती है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के समय को आयु कहते हैं। आयुर्विज्ञान हमें यह बताता है कि हम स्वस्थ रहने के लिये क्या–क्या करें व किन–किन नियमों का पालन करें। प्राचीन आयुर्वेद के मत में हमारे शरीर के आवश्यक स्तम्भ वात, पित्त व कफ माने गये हैं यह शरीर को धारण करते हैं। किन्तु जब इनकी मात्रा शरीर में बढ़ जाती है तो यह ही दोष कहलाते हैं। इनकी विषमता से बीमारियाँ होती हैं। स्वस्थ रहने के लिये योग के अन्तर्गत योगासन, प्राणायाम, जीवन तत्व साधन तथा षट्कर्म के रूप में नेति, धोति आदि षट कर्म किये जाते हैं। आजकल योग की क्रियाओं का प्रचार खूब हो रहा है, किन्तु शरीरगत क्रियाओं को न समझने से नुकसान भी हो रहा है। षट कर्म में सूत्र नेति प्रतिदिन करनी चाहिये। दुग्धनेति, घृतनेति भी साथ में की जा सकती है। कुन्जल सप्ताह में कम से कम एक बार ही किया जाना चाहिये। रोज करने से मन्दाग्नि हो जाती है अर्थात् भूख समाप्त हो जाती है। विरेचन अथवा शंख प्रक्षालन माह में एक बार ही करना चाहिये तथा साथ में खान–पान के नियमों का पालन करना चाहिये। कुछ लोग शंख प्रक्षालन महीने में कई बार व प्रतिदिन करते हैं यह हानिकारक है। वस्ती आदि क्रियायें भी साप्ताहिक कर सकते हैं, आवश्यकता पड़ने पर अन्यथा माह में एक बार करें।

मनुष्य को अपने शरीर की प्रकृति का ज्ञान होना चाहिये। कुछ लोग पित्त प्रकृति के होते हैं तथा कुछ वात व कफ प्रकृति के। प्रकृति का तात्पर्य है उस विशेष प्रकृति की प्रधानता। योग आसन व षटकर्म की क्रियायें तो ठीक प्रकार से किये जाने पर सभी प्रकार की प्रकृति के लोगों के लिये लाभदायक रहते हैं।

योगासन करने से वात, पित्त व कफ दोनों समान अवस्था में रहते हैं अतः स्वास्थ्य ठीक रहता है। मनुष्य को अपने भोजन व खान पान पर विशेष ध्यान देना चाहिये। भोजन का निश्चित समय होना चाहिये ताकि पाचन तन्त्र ठीक रहे, जितना आवश्यक हो उतना ही भोजन करना चाहिये। भोजन करते हुये बार–बार पानी नहीं पीना चाहिये इससे मन्दाग्नि हो जाती है बहुत मिर्च हों तो बार–बार पानी लोग पीते हैं यह उचित नहीं है। भोजन अच्छी तरह से चबा–चबा कर करना चाहिये। भोजन के समय पानी कम से कम लेना चाहिये। सात्विक भोजन ही मनुष्य के लिये श्रेयस्कर है।

आजकल वसन्त ऋतु चल रहा है। योग की क्रियाओं के अभ्यास द्वारा शीतकाल में संचित कफ आदि को शरीर से बाहर निकाल देना चाहिये' वसन्ते भ्रमणम् पथ्यम् ' वसन्त ऋतु में भ्रमण लाभकारी रहता है। शरीरगत कफ को दूर करने के लिये कफनिःसारक द्रव्यों का प्रयोग भी कर सकते है। शहद, अदरक एवं तुलसी दल का प्रयोग लाभकारी रहता है।

मौसम के अनुसार भोजन तथा फल का सेवन करना चाहिये। भोजन में सलाद का प्रयोग उत्तम रहता है। मैदा आदि से बनी वस्तुयें पाचन शक्ति को खराब करती हैं परिणाम स्वरूप गैस, खट्टी डकार तथा अफारा आदि हो जाता है। अतः आटा आदि बहुत बारीक नही लेना चाहिये। संयमित व शुद्ध भोजन से स्वास्थ्य तो ठीक रहता ही है मन भी प्रसन्न रहता है। भोजन को करते समय शान्त व बैठकर आसन लगाकर बैठना चाहिये, खड़े-खड़े भोजन पशु करता है, मनुष्य नही। प्राचीन परम्पराओं का ह्रास होता जा रहा है। आज मनुष्य प्राचीन नियमों की अवहेलना कर रहा है। अतः दुःख उठा रहा है। अतः समझदारी से भोजन ग्रहण करना तथा घूमना फिरना आदत में रहना चाहिये।

श्री महाप्रभुराम लाल परमात्मने नमामि

– राजीव कुमार, अम्बिका नगर, जि० ऊना, हि.प्र.

सारा भारत प्रभुजी की योग कर्म भूमि ।
समस्त योगाश्रमों में योग गंगा बहाई है ।।
श्री सिद्धगुफा में महाप्रभु रामलाल जन्मोत्सव की पावन बेला आई है ।
योग साधकों की अपार श्रद्धा-निष्ठा "अष्टांग योग-मेला" ने धूम मचाई है।।

जीव के जन्म-जन्मांतरों के अन्तराय सरल योग-पद्धत्ति ने ही गति दिलवाई है।
दैहिक, दैविक, भौतिक, त्रय तापों से सदैव मुक्ति पाई है ।।

महायोगेश्वर श्री राम लाल द्वारा रचित 'जीवन तत्व साधन' ने संचार कराई है ।
सम्यक्-आसन, प्राणायाम यम-नियमों ने सतत् काया-कल्प करवाई है ।।

सारा भारत प्रभुजी की योग कर्म भूमि, समस्त योगाश्रमों में योग गंगा बहाई है।
"श्री सिद्धयोग" पत्रिका का योग संदेश, योग जनित शाँति दिलवाई है ।।

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने भी शक्तिपात दीक्षा दिलवाई है ।
सारे योगी बच्चे, गुरु-भाई-बहनों को पूर्ण-शक्ति बंटवाई है ।।

सारे भारत में योग प्रचार-प्रसार ! श्रद्धालुओं ने योग अलख जगाई है ।
चौरासी लाख योनियों को वेध, मोक्ष द्वार-साधना जागृत करवाई है ।।

शुद्ध-सात्विकता की बलवती एकाग्र-भावना ने राह सरल बनाई है ।
गुरु-गीता, श्रवण-मनन-चिंतन, काल को भी चपत लगाई है ।।

योग साधना अनवरत तपस्या ! नेपालवासी ने कृपा बरसाई है ।
श्री सिद्धगुफा में श्री रामनवमी पर्व, प्रभुजी स्वयं विराजते खुशियाँ छाई है ।।

'कन्हैया ! तू नहिं मोहि डरात'

कन्हैया! तू नहिं मोहि डरात ।
षटरस धरे छाँड़ि कत पर–घर चोरी करि–करि खात ।।
बकत–बकत तोसौं पचि हारी, नैकुहुँ लाज न आई ।
ब्रज–परगन–सिकदार, महर, तू ताकी करत ननहई ।।
पूत सपूत भयौ कुल मेरैं, अब मैं जानी बात ।
सूर स्याम अब लौं तुहिं बकस्यौ, तेरी जानी घात ।।

सूरदास जी कहते हैं – (माता ने डाँटा –) 'कन्हैया ! तू मुझसे डरता नहीं है? घर में रखे छहों रस छोड़कर तू दूसरे के घर चोरी करके क्यों खाता है? मैं तुझसे कहते–कहते प्रयत्न करके थक गयी; पर तुझे तनिक भी लज्जा नहीं आयी? श्रीव्रजराज इस व्रज–परगने के सिक्केदार हैं (यहाँ उनका सिक्का चलता है), तू उनकी हेठी करता है? मैंने अब यह बात जान ली कि मेरे कुल में तू बड़ा योग्य पुत्र जन्मा है। श्याम ! अब तक तो मैं तुझे क्षमा कर दिया था, पर अब तेरे दाव समझ गयी हूँ।'

आजा सिद्धगुफा दरबार में

– श्री विजय शर्मा, सहारनपुर

तर्ज– बनवारी रे जीने का सहारा

धाम संवाई में सब का होवें उद्धार रे।
आजा सिद्धगुफा – दरबार में ।।

संवाई गाँव में प्रभु जी ने आके एक गुफा बनवाई
प्रभु चन्द्रमोहन जी को भेज वहाँ योग की गंग बहाई
योगामृत मिले दरबार में...धाम संवाई में सब.......

बढ़ती भीड़ को देख प्रभु ने मन का भाव बताया
बन्द गुफा से बाहर आ के नभ गमन को दिखाया
लीला प्रभु ने दिखाई गुफा धाम में...धाम संवाई में सब......

दुखड़ा जिसने अपना सुनाया चिन्तामुक्त कराया
शरण में अपनी लेकें उसको भव से पार कराया
भाग्य चमके प्रभु दरबार में... धाम संवाई में सब........

भक्तों के संग स्नान गंगा की अद्भुत लीला रचाई
गुफा धाम में बैठे भक्तों को कुएँ में गंगा दिखाई
गंगा कुएँ में बुलाई प्रभु राम ने... धाम संवाई में सब........

दर्शनाभिलाषा

– श्री भूपेन्द 'अंकुश', जलेसर

मिलेंगे कब मुझे दर्शन,
कन्हैया तेरी सूरत के।
मेरे प्यासे दोऊ लोचन,
कन्हैया तेरी सूरत के।।

जन्म–दर–जन्म का क्रन्दन,
श्रवण कर देवकी नन्दन,
मेरे नैना बनें स्यन्दन,
कन्हैया तेरी सूरत के ।। 1 ।।

तेरे घर–घर ठिकाने हैं,
मधुर मनहर फसाने हैं,
सूर मीरा दिवाने हैं,
कन्हैया तेरी सूरत के ।। 2 ।।

रूप का साँवरा बादल
जगाये प्यास को पल पल,
देखकर हैं सभी पागल,
कन्हैया तेरी सूरत के ।। 3 ।।

चाँद–सूरज–सितारे हैं,
नदी धारा किनारे हैं,
नजारे ही नजारे हैं,
कन्हैया तेरी सूरत के ।। 4 ।।

भस्मधारी भिखारी हैं,
तिलक धारी पुजारी हैं,
भक्त रसखान विहारी हैं,
कन्हैया तेरी सूरत के ।। 5 ।।

ऊँकार कर दो प्रभुजी

– श्रीमती डॉ. नमिता राकेश सिंह सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

सागर हो तुम तो भगवन मुझको इतना वर दो
एक बूँद मुझको भी दे दो आत्मसात् कर लो प्रभुजी
बन जाते घनश्याम गगन में रस बरखा बरसाते प्रभुजी
रस रंग देते बहारों को तुम गुलशन बन जाते प्रभुजी
इन्द्रधनुष हो तुम तो भगवन मुझको इतना वर दो
एक रंग मुझको भी दे दो, श्याम रंग भर दो प्रभुजी सागर....
बन जाते गति लहरों में पर्वत भी हिल जाते प्रभु जी
विजय-नाद हो तुम तो भगवन मुझको इतना वर दो
एक स्वर मुझको भी दे दो ऊँकार कर दो प्रभुजी
बन जाते मन की उपमा ममता को दिखलाते प्रभुजी
नीलांचल की तह में तो मोती माणिक मीणा प्रभुजी
श्री समृद्धि तुम हो भगवन मुझको इतना वर दो
एक कौड़ि मुझको भी दे दो नर कुबेर कर दो प्रभुजी
बन जाते विराट स्वरूप अर्जुन को दिखलाते प्रभुजी
बाँध दशो दिशाओं को तुम दिगभु बन जाते प्रभुजी
मुक्तिदायी हो तुम तो भगवन मुझको इतना वर दो
जीवन दायिनी सुधा देकर मुझे अमरदान कर दो प्रभुजी

योग-आसन

वकासन

विधि - इस आसन में सरल भाव से बैठकर अपने हाथों के पंजे जमीन पर जमा लें व अपने पैरों को उठाकर आगे की ओर पाद तल किए हुए अपने कन्धों पर चढ़ा लें व हाथ के बल से सारे शरीर को ऊपर को उठा दें। शरीर के उठने पर फैलाव के साथ और आगे को बढ़ जायेगा। इसी का नाम वकासन है। आसन क्लासों में यह आसन और भी कई प्रकार से कराया जाता है किन्तु अधिक लाभप्रद यही है।

लाभ - इसके करने से भुजदण्ड पुष्ट होते हैं। छाती का विकास एवं उत्साह बढ़ता है। फेफड़े शुद्ध होते हैं। जठराग्नि बढ़ती है व यह सब प्रकार से आरोग्य प्रद है।

धैर्य की मशाल लिए

-- आशुतोष मिश्रा

धैर्य की मशाल लिए,
साहस को कवच बना
चला मैं महासंग्राम रचने आज
हर वृत्तियों के द्वन्द युद्ध के बीच
खोजूँ मैं अपने शत्रु को।

जो नायक है उस सेना का
प्राणों के वाणों को और नकिला बना
घायल करूँ मैं उन महावृत्तियों के
सेना को, जो कभी खत्म होने का
नाम न लेवें, आज प्राणों के यज्ञ
को जला मैं, खुद की आहूति बना
अपने को चढ़ाऊ महाकाली को।

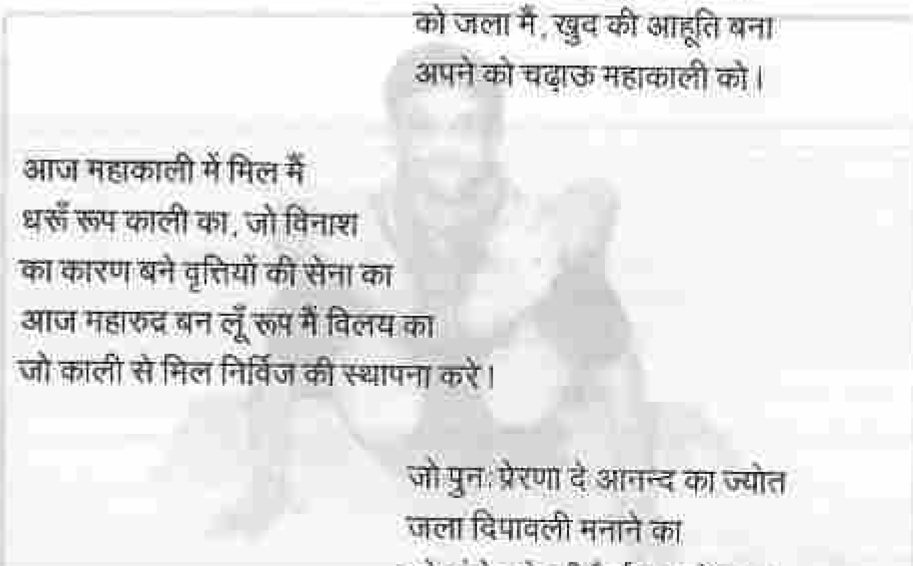

आज महाकाली में मिल मैं
धरूँ रूप काली का, जो विनाश
का कारण बने वृत्तियों की सेना का
आज महारुद्र बन लूँ रूप मैं विलय का
जो काली से मिल निर्विज की स्थापना करे।

जो पुन: प्रेरणा दे आनन्द का ज्योत
जला दिपावली मनाने का
जो संकेत दे रही है ईश्वर के प्रकट
होने का आत्म मंदिर में
तभी धैर्य की मशाल ठंडी होकर
महासूर्य बन जग को प्रकाशित करूँ मैं।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सदुपदेश

(अमृतवाणी से साभार)

साधना

• छिछले तालाब का पानी पीना हो तो उसे न खलबलाकर ऊपर से धीरे–धीरे पानी लेना चाहिए। ज्यादा खलबलाने से नीचे का कीचड़ ऊपर आकर सारा पानी गँदला हो जाता है। यदि तुम सच्चिदानन्द का लाभ करना चाहते हो तो गुरु के उपदेश पर विश्वास रखकर धीरज के साथ साधना किए चलो। वृथा शास्त्रविचार या तर्कवितर्क में मत पड़ो, नहीं तो तुम्हारी क्षुद्र बुद्धि गड़बड़ा जाएगी।

• यदु मल्लिक का मकान कहाँ है, बगीचा कहाँ है, उसके पास कितनी धन–सम्पत्ति है इन सब बातों की खोज–खबर बहुत लोग किया करते हैं, परंतु प्रत्यक्ष यदु मल्लिक को देखने या उसके निकट जाकर बातचीत करने का कष्ट कितने लोग उठाते हैं! शास्त्रचर्चा, धर्म–सम्बन्धी चर्चा तो बहुत लोग करते हैं, परन्तु इनमें से कितने लोग ईश्वर के दर्शन करने की इच्छा रखते हैं या उनके निकट जाने के लिए उद्यम करते हैं?

• तुम जो वस्तु प्राप्त करना चाहते हो उसके अनुरूप साधना करो, नहीं तो कैसे होगा? 'दूध में मक्खन है' कहकर सिर्फ चिल्लाने से मक्खन नहीं मिल जाएगा, यदि मक्खन चाहते हो तो दूध का दही जमाओ, उसे अच्छी तरह मथो, तभी मक्खन निकलेगा। इसी तरह, यदि तुम ईश्वरदर्शन करना चाहते हो तो साधना करो, तभी उनके दर्शन पाओगे। 'ईश्वर ईश्वर' कहकर सिर्फ शोरगुल मचाने से क्या फायदा?

• यदि राजा से मिलना हो तो उसके महल में जाकर सातों ड्योढ़ियों को पार करना होगा। परन्तु यदि पहली ही ड्योढ़ी पार करके कोई कहे, ''राजा कहाँ है?'' तो कैसे होगा! सातों ड्योढ़ियों को पार करने के बाद ही न राजा दिखाई देंगे।

• कर्म चाहिए, तभी ईश्वरदर्शन होते हैं। एक दिन मैंने भावावस्था में हालदार–पुकुर देखा। देखा, एक नीची जाति का आदमी काई हटाकर पानी भर रहा है और बीच–बीच में एक–एक बार हाथ में लेकर देख रहा है। मानो उसने यह दिखाया कि काई हटाए बिना पानी नहीं दिखाई देता – कर्म किए बिना भक्ति नहीं होती, ईश्वरदर्शन नहीं होते। ध्यान, जप यही कर्म है, उनका नामगुण–कीर्तन भी कर्म है और दान, यज्ञ ये सब भी कर्म ही हैं।

• स्वयं श्रीकृष्ण ने भी राधायन्त्र लेकर कितनी साधनाएँ की थीं। यन्त्र ब्रह्मयोनि है, साधना यानी उसी की पूजा और ध्यान करना। इस ब्रह्मयोनि से कोटि कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि हो रही है।

• साधना की गति तीन प्रकार की होती है – पक्षी, गति, वानरगति तथा पिपीलिकागति।

पक्षीगति – मानो चिड़िया ने एक फल पर जोर से चोंच मारी, वह फल नीचे गिर पड़ा, चिड़िया उसे ले नहीं सकी। इस प्रकार कुछ साधक इतनी अधीरता के साथ साधना करते हैं कि

उनके प्रयत्न सफल नहीं हो पाते।

वानरगति – बन्दर मुँह में फल को पकड़कर एक डाली से दूसरी डाली पर कूदने गया, फल मुँह से छूटकर नीचे गिर पड़ा। साधक यदि अपने आदर्श को दृढ़ता के साथ पकड़े न रखे तो इस सदापरिवर्तनशील जीवन के विभिन्न घटनाचक्र में पड़कर कभी–कभी वह उसे खो बैठता है।

पिपीलिकागति – पिपीलिका (चींटी) धीरे–धीरे बढ़ती हुई खाद्यवस्तु के निकट जाती है और उसे मुँह में लेकर धीरे–धीरे अपनी जगह पर लौटकर उसका मजा चखती है। यह पिपीलिका गति की साधना ही श्रेष्ठ साधना है – इसमें फल की प्राप्ति और उसका उपभोग बिलकुल निश्चित है।

• जिसे मछली पकड़ने का शौक है वह अगर सुने कि अमुक तालाब में अच्छी बड़ी–बड़ी मछलियाँ हैं, तो वह पहले जिन्होंने उस तालाब से मछली पकड़ी हैं उनके पास जाता है और पूछता है, 'क्या उस तालाब में सचमुच ही बड़ी मछलियाँ हैं? और अगर हों तो कौन सा चारा लगाने से ये फँसती हैं?' इन सब जरूरी बातों की जानकारी इकट्ठा करके वह उस तालाब में जाकर बंसी लगाकर बैठता है। काफी समय तक धीरज के साथ बैठे रहने के बाद अन्त में उसकी बंसी में बड़ी मछली आ फँसती है। धर्ममार्ग में भी इसी प्रकार, साधु–महापुरुषों की बात पर विश्वास रखकर, भक्तिरूपी चारा लगाकर, हृदयरूपी बंसी डाले धैर्य के साथ बैठे रहना पड़ता है, तभी अन्त में भगवान की प्राप्ति होती है।

• श्रीरामकृष्ण कहा करते थे – 'क्या तुम मेरे आदेश का सोलहों आना पालन कर सकोगे? मैं जो कहता हूँ उसका एक आना भी यदि तुम कर सको तो तुम्हारी मुक्ति निश्चित है।

• आत्मज्ञानलाभ के लिए साधना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु यदि दृढ़ विश्वास रहे तो थोड़ी ही साधना से काम बन जाता है।

• एक बार यदि किसी की भगवन्नाम की शक्ति पर विश्वास हो जाए और वह सतत नाम जपने लगे तो फिर उसके लिए विवेक–विचार या अन्य किसी भी तरह के साधन–भजन की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसके सब सन्देह दूर हो जाते हैं, चित्त शुद्ध हो जाता है तथा नाम की सामर्थ्य से स्वयं भगवान का साक्षात्कार हो जाता है।

• वेद–पुराण का श्रवण करना पड़ता है, पर तन्त्र का प्रत्यक्ष अनुष्ठान करना पड़ता है। हरिनाम मुख से बोलना और कान से सुनना भी पड़ता है, जैसे किसी–किसी बीमारी में दवा खानी भी पड़ती है और लगानी भी।

• सिद्ध दो तरह के होते हैं – साधनसिद्ध और कृपासिद्ध। कोई–कोई बड़ी मेहनत करके नहर काटकर या पानी खींचकर खेत को सींचते हैं, तब कहीं उन्हें अच्छी फसल मिलती है। परन्तु किसी–किसी को पानी लाने या सींचने का कष्ट ही नहीं उठाना पड़ता, बारिश आकर खेत में अपने आप पानी भर जाता है। माया के हाथों से छुटकारा पाने के लिए प्रायः सभी को कष्टसाध्य साधन–भजन करना पड़ता है। परन्तु कृपासिद्ध को कष्ट नहीं उठाना पड़ता, ईश्वर की कृपा से वह वैसे ही मुक्त हो जाता है। परन्तु ऐसे कृपासिद्ध विरले ही होते हैं।

एकाग्रता तथा ध्यान

• ध्यान और चिन्तन–मनन का सतत अभ्यास करना चाहिए।

• सन्ध्या हो जाने पर सब काम छोड़कर ईश्वर चिन्तन करना चाहिए। अंधेरा छा जाने पर मन में अपने आप ईश्वर का विचार उठता है। "अभी–अभी सब कुछ दिखाई दे रहा था, पर अब तो सब अंधेरे में ओझल हो गया। ऐसा किसने किया?" इस तरह के विचार आते हैं। इसीलिए सन्ध्या के समय सब काम छोड़कर उन्हें पुकारना चाहिए। देखा नहीं, मुसलमान लोग कैसे सब काम छोड़कर ठीक समय पर नमाज पढ़ते हैं।

• अगर सरसों की पुड़िया में से एक बार सरसों के दाने बिखर गए तो फिर उन्हें चुनकर इकट्ठा करना जिस प्रकार दूभर हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का मन यदि एक बार संसार के विषयों में बिखर जाए तो फिर उसे समेटकर एकाग्र करना दूभर हो जाता है।

• ध्यान मन में, वन में या कोने में करना चाहिए।

• प्रथम अवस्था में निर्जन स्थान में जाकर एकाग्र चित्त से ईश्वरचिन्तन करना चाहिए, नहीं तो मन में नाना विक्षेप आते हैं। दूध और पानी को यदि एकत्र कर दो तो दूध पानी में मिल जाएगा; परन्तु यदि उसी दूध का निर्जन में मक्खन बना लो तो वह पानी में उतराता रहेगा – मिलेगा नहीं। इसी तरह साधना–अभ्यास के द्वारा चित्त की एकाग्रता प्राप्त कर लेने पर मनुष्य चाहे जिस परिस्थिति में रहे, उसका मन उससे ऊपर उठकर ईश्वर में ही लीन रहता है।

• श्रीरामकृष्ण कभी–कभी अपने शिष्यों से कहा करते – 'ध्यान आरम्भ करने के पहले एक बार (अपनी ओर दिखाते हुए) इसका चिन्तन कर लिया करना। यह क्यों कहता हूँ जानते हो? – इस पर तुम लोगों का विश्वास है, इसलिए इसके बारे में सोचते ही भगवान की याद आ जाएगी। जैसे, गौओं के झुण्ड को देखते ही चरवाहे की बात याद आती है, वकील को देखते ही अदालत–कचहरी की बात याद आती है, बेटे को देखते ही उसके बाप की याद आती है, वैसे ही। मन नाना विषयों में बिखरा रहता है, इसके बारे में सोचते ही पूरा मन एक जगह सिमट आएगा, और उस एकाग्र मन को ईश्वरचिन्तन में लगाने पर ठीक–ठीक ध्यान हो सकेगा।'

• मन को एकाग्र करने का सब से सरल उपाय है उसे दीप की शिखा पर स्थिर करना। शिखा के सब से भीतर का नीला भाग मानो कारणशरीर है। उस पर मन को स्थिर करने से मन शीघ्र ही एकाग्र हो जाता है। इस नीली ज्योति के बाहर का भाग मानो सूक्ष्मशरीर है और उसके भी बाहर का भाग स्थूलशरीर।

• अपनी साधनावस्था का उल्लेख करते हुए श्रीरामकृष्ण भक्तों से कहा करते – "उस समय इष्टचिंतन और ध्यान करने के पहले ऐसा सोचा करता था मानो मन को अच्छी तरह से धो ले रहा हूँ; मन के भीतर (कुचिन्ता, वासना आदि) जो कुछ मैल या गन्दगी है वह सब अच्छी तरह धोकर मन को स्वच्छ कर लेने के बाद उसमें इष्टदेव को लाकर बिठा रहा हूँ। ऐसा किया करो।"

• ध्यान करते समय ऐसा चिन्तन किया करो कि मानो तुम अपने मन को रेशम की रस्सी से इष्टदेवता के चरणकमलों के साथ बांधकर रख रहे हो, ताकि वे वहाँ से और कहीं न जा पाएँ। रेशम की रस्सी किसलिए कह रहा हूँ? वे चरण कमल अत्यन्त कोमल हैं, दूसरी

सरी रस्सी से बांधने पर उन्हें कष्ट होगा, इसलिए।

• ध्यान करते समय बीच–बीच में साधक को एक प्रकार की नींद–सी आया करती है, उसे योगनिद्रा कहते हैं। इस अवस्था में कई साधकों को ईश्वरीय रूपों के दर्शन होते हैं।

• सात्विक मनुष्य किस प्रकार ध्यान करता है जानते हो? वह गहरी रात के समय मसहरी के भीतर बिछौने पर बैठकर ध्यान किया करता है, ताकि कोई जान न पाए।

• ईश्वर में बिलकुल डाइल्यूट (एकरूप) हो जाओ– जैसे धातु तेजाब में गलकर एक हो जाती है।

• मन के स्थिर होने पर श्वास स्थिर होता है – कुम्भक हो जाता है। यह कुम्भक भक्तियोग के द्वारा भी होता है, तीव्र भक्ति से भी श्वास स्थिर हो जाता है।

• गहरे ध्यान में ध्येय वस्तु का यथार्थ स्वरूप प्रकट होकर ध्याता के अन्तःकरण को प्रकाशित कर देता है।

• एक दिन एक मैदान पर चलते हुए अवधूत ने देखा कि सामने से ढोल–नगाड़े बजाते बजाते, बड़ी धूम–धाम के साथ एक बरात आ रही है। पास ही में एक बहेलिया दत्तचित्त होकर एक चिड़िया पर निशाना साध रहा है। वह अपने लक्ष्य में इतना तल्लीन था कि इतने नजदीक से इतनी धूमधाम के साथ आने वाली बरात की ओर उसने एक बार भी नजर उठाकर नहीं देखा। अवधूत ने उस बहेलिए को नमस्कार करते हुए कहा, ''महाराज! आप मेरे गुरु हैं। जब मैं ध्यान करने बैठूं तब मेरा मन भी इसी तरह ध्येय वस्तु पर एकाग्र रहे।''

• एक आदमी मछली पकड़ रहा था। अवधूत ने उसके निकट जाकर पूछा, 'भाई, अमुक जगह जाने का रास्ता कौन सा है?' उस समय उसकी बंसी हिलने लगी थी – मछली काँटे में लगे चारे को खाने लगी थी। वह आदमी बंसी की ओर एकटक देखते हुए निःस्तब्ध बैठा रहा। जब मछली काँटे में फँस गई तो उसे निकालकर वह अवधूत की ओर मुड़कर बोला, 'आप क्या कह रहे थे?' अवधूत ने उसे प्रणाम करते हुए कहा, 'आप मेरे गुरु हैं। जब मैं परमात्मा के ध्यान में बैठूं तब मैं इसी तरह, कार्य सिद्ध हुए बिना दूसरी ओर ध्यान न दूं।'

• किसी तालाब के किनारे एक बगुला एक मछली को पकड़ने के लिए बड़ी सावधानी से धीरे–धीरे आगे बढ़ रहा था, और पीछे से एक बहेलिया उस बगुले पर निशाना लगा रहा था, पर बगुले का उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं था। अवधूत ने उस बगुले को नमस्कार करते हुए कहा, 'जब मैं ध्यान में बैठूं तब मैं भी इसी प्रकार पीछे मुड़कर न देखूं।'

• कहावत है कि जो ध्यानसिद्ध है उसके लिए मुक्ति निश्चित है। ध्यानसिद्ध किसे कहते हैं जानते हो? जो ध्यान में बैठते ही भगवद्‌भाव में विभोर हो जाता है।

• गहरे ध्यान में मनुष्य बाह्यज्ञानरहित हो जाता है। ध्यान में इतनी एकाग्रता आ जाती है कि दूसरा कुछ भी दिखाई–सुनाई नहीं देता, यहाँ तक कि स्पर्श का भी बोध नहीं रहता। इस समय यदि देह पर से साँप भी चला जाए तो न तो जो ध्यान कर रहा है उसे पता चलता है और न उस साँप को ही।

• जो ध्यान करते हुए इतना मग्न हो जाता है कि सिर पर चिड़ियों के बैठने पर भी समझ

नहीं पाता, वही ठीक–ठीक ध्यान करता है।

• ध्यान गहरा होने पर इन्द्रियों के सभी कार्य बन्द हो जाते हैं। मन की बहिर्मुखवृत्ति एकदम रुक जाती है, मानो घर का बाहरी दरवाजा बन्द हो गया हो। इन्द्रियों के पाँचों विषय–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध–बाहर पड़े रह जाते हैं। पहले पहल ध्यान के समय इन्द्रियों के सब विषय सामने आते हैं, परन्तु ध्यान के गम्भीर होने पर वे फिर नहीं आते–बाहर पड़े रहते हैं।

• तुम चाहे जिस मार्ग से जाओ, मन के स्थिर हुए बिना योग नहीं होता। मन योगी के वश में होता है, योगी कभी मन के वश में नहीं होता।

कर्म साधन और ईश्वर प्राप्ति साध्य

प्रकृति का धर्म है कि वह तुमसे कर्म करा ही लेती है, चाहे तुम्हारी इच्छा हो या न हो। जब ऐसा ही है, तब कर्म पूरी तरह से क्यों न किया जाय? कर्म अवश्य करो, परन्तु उसमें आसक्त न रहो। अनासक्त भाव से किया गया कर्म ईश्वर प्राप्ति का साधन है। अनासक्त कर्म को साधन और ईश्वर–प्राप्ति को साध्य वस्तु समझो।

– श्री रामकृष्ण परमहंस

सिद्धयोग

आय-व्यय का विवरण वर्ष 2014-15

आय		व्यय	
पिछला शेष (बैंक मे जमा)	2,91,945/-	कार्यालय खर्च	13500/-
नगद हाथ में पिछला	24,808/-		
वार्षिक शुल्क से प्राप्त	89,900/-	कागज व छपाई	1,44,714/-
सहयोग राशि से प्राप्त	35,814/-	चैक निस्तारण खर्च	28/-
मनीआर्डर से प्राप्त	6,541/-	बैंक में शेष जमा	3,06,062/-
बैंक से प्राप्त ब्याज	15,045/-	नगद हाथ में	849/-
चैक से प्राप्त	1,100/-		
कुल योग -	4,65,153/-	कुल योग -	4,65,153/-

सहयोग राशि दाताओं की सूची

आनन्द प्रकाश, एत्मादपुर (आगरा)	500/-
पं.जगज्योति नारायण शर्मा, दिल्ली	50/-
सुरेन्द पाल कोहन्ड, हरियाणा	555/-
वीरेन्दपाल, करनाल	500/-
नरेश वर्मा, सहारनपुर	1100/-
यशपाल ढांडा, पानीपत	500/-
निर्मल कुमार कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर	200/-
इन्दोर मण्डल	7100/-
सन्तोष हरसीता, दिल्ली	251/-
कैलाश चन्द गुप्ता, पूणे	1000/-
उमाशंकर कालपी	500/-
जितेन्द चहल, सोनीपत	1600/-
सुशील वर्मा, नई दिल्ली	1100/-
छाया चौधरी, इन्दोर	1000/-
इन्द कुमार, दिल्ली	101/-
रामचन्द्र शिवचरण कुराना, पानीपत	1100/-
त्रिपुरारी पाण्डेय मेरीटार, बलिया	5000/-
अमरनाथ वर्मा, बलिया	500/-
तारा चन्द सैनी, जयपुर	500/-
साहिब सिंह सैगर, उमरी जालोन	505/-
वैभव दयाल गौरवदयाल, कानपुर	2100/-
पूतान सिंह गौर, हरदोई	500/-
अमरनाथ सक्सैना, शिवपुरी	2100/-
हरिश चन्द फक्कड़, भोजपुर	1000/-
दिलीप चौधरी, इन्दौर	501/-
मुकेश कुमार गुप्ता, गंगापुर सिटी	500/-
चन्द्रशेखर गुप्ता, गंगापुर सिटी	5000/-
योग :-	35814/-

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

''अमृतसागर के मध्य एक मणिमय द्वीप है, जो कल्पवृक्षों की वाटिका से घिरा हुआ है। उस द्वीप के मध्य कदम्ब के उपवन से आवृत चिन्तामणि से निर्मित एक भव्य भवन है, जिसमें शिवाकार मंच के ऊपर स्थित परमशिवस्वरूप पर्यङ्क पर भगवती चिदानन्दलहरी विराजमान रहती हैं, ऐसी आप भगवती का जो कतिपय भावुक भक्त निरन्तर भजन करते रहते हैं, वे धन्य हैं।''

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा